RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 11 प्रकाशन तिथि : 25 अक्टूबर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 नवम्बर 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

दीप में स्नेह, स्नेह से ज्योति, ज्योति पर चढ़े पतंगे आन।
कौम पर होना है कुर्बान, धर्म पर होना है बलिदान।।

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

फतेह सिंह जी
जसोल

कृष्णपाल सिंह

विशन सिंह
चांदेसरा

सुरेन्द्रपाल सिंह
मेवानगर

फतेहसिंह जी जसोल, कृष्णपालसिंह जी व विशनसिंह जी चांदेसरा के RI से पदोन्नत होकर नायब तहसीलदार बनने व सुरेन्द्रसिंह जी मेवानगर का आबकारी निरीक्षक पद पर चयन होने पर हार्दिक बधाई व उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

-: शुभेच्छु :-

हीर सिंह कालेवा, घनश्याम शेखावत जसोल, पृथ्वीसिंह थोब,सवाई सिंह साथुणी, परबतसिंह जाजवा, जेतमालसिंह बिशाला, दलपतसिह राठौड़ चांदेसरा, मांगूसिंह वरिया, कानसिंह डाभड़, तेजसिंह महेचा नोसर, गर्जेद्र सिंह राठौड़ नया सोमेसरा, बालुसिंह पंवार खेडा, सवाईसिंह अध्यापक नवातला, विशनसिंह पूर्व सरपंच रावली ढाणी, स्वरूपसिंह जागसा, उदयसिंह तिलवाड़ा, गर्जेद्र करण बागावास, भलेसिंह मेवानगर, देवीसिंह जोधा जूण्ड, हरिसिंह वेदरलाई, जय सिंह पारलू, राजेन्द्र सिंह थोब, महेंद्र सिंह सराणा, शैतानसिंह महेचा निम्बा की ढाणी (जसोल), शम्भूसिंह बिशनसिंह राठौड़ मेवानगर

संघशक्ति

4 नवम्बर, 2021

वर्ष : 57 अंक : 11

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	06
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	08
☞ पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)	✍ श्री विरेन्द्रसिंह मांडण	12
☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	✍ स्वामी जगदात्मानन्द	14
☞ जदुवंशी करौली का इतिहास	✍ राव शिवराजपाल सिंह इनायती	18
☞ सनातन धर्म	✍ ब्रिगेडियर मोहनलाल (से.नि.)	20
☞ इतिहास के झरोखे में गोगा चौहान	✍ श्री मातुसिंह मानपुरा	22
☞ विचार-सरिता (सप्त षष्टि: लहरी)	✍ विचारक	27
☞ सत्य असत्य प्रकाश	✍ अजयजी आर्य, दर्शनाचार्य	29
☞ संघ की नैतिक व व्यवहारिक शिक्षा का महत्त्व	✍ श्री ब्रजराजसिंह खारड़ा	31
☞ कल्पना से कर्म, कर्म से सत्यता की खोज तक	✍ श्री जगमालसिंह ताणू	33
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

विविध समाचार :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के संरक्षक माननीय भगवानसिंह जी 30 अगस्त को झिंझनियाली (जैसलमेर) में आयोजित संत मूलचंद जी की जयन्ती में सम्मिलित हुए। 31 अगस्त को जैसलमेर स्थित संघ कार्यालय तनाश्रम में संरक्षक श्री के सान्निध्य में पारिवारिक स्नेह मिलन का आयोजन हुआ। 1 सितम्बर, को संरक्षक श्री पोकरण पहुँचे और पारिवारिक स्नेह मिलन में सम्मिलित हुए। 2 सितम्बर को नारायण निकेतन बीकानेर में संरक्षक श्री के सान्निध्य में पारिवारिक स्नेह मिलन का आयोजन रहा। बीकानेर से नागौर पहुँचकर 4 सितम्बर को स्वयंसेवकों से मिले। वहाँ से कुचामन स्थित साधना संगम के कार्यालय आयुवान निकेतन पहुँचकर स्वयंसेवकों से मिले। वयोवृद्ध स्वयंसेवक छोटूसिंहजी जाखली के आवास पर पहुँचकर उनके स्वास्थ्य की जानकारी ली। 5 सितम्बर को सांवराद में दिवंगत स्वयंसेवक जवानसिंहजी के यहाँ पहुँचकर उनके परिवारजन को सांत्वना दी। उसी दिन सायंकाल जयपुर पहुँचे तथा स्वयंसेवकों से चर्चा की। 6 से 8 सितम्बर तक जयपुर प्रवास में स्वयंसेवक मिलने हेतु आते रहे। 8 सितम्बर को स्वामी धर्म बन्धुजी संघशक्ति पहुँचे, उनसे चर्चा हुई। 9 सितम्बर को जोधपुर के लिये रवाना हुए जहाँ शाम को कार्यालय तनायन में पारिवारिक स्नेह मिलन का आयोजन हुआ। 10 सितम्बर को आलोक आश्रम बाड़मेर पहुँच गए।

संरक्षक श्री 15 से 20 सितम्बर तक गुजरात प्रवास पर रहे। 15 सितम्बर को आलोक आश्रम बाड़मेर से डीसा पहुँचकर स्वयंसेवकों से चर्चा की, आगे मेहसाणा में स्वयंसेवकों से मिलकर शाम को अहमदाबाद पहुँचे। वहाँ गोता स्थित समाज भवन में स्नेह मिलन का आयोजन रहा जिसमें महिलाएँ भी बड़ी संख्या में सम्मिलित हुई। 16 सितम्बर को साणंद पहुँचे जहाँ स्वयंसेवक सपरिवार पहुँचे। 16 सितम्बर की शाम सुरेन्द्रनगर स्थित संघ के कार्यालय शक्तिधाम में स्वयंसेवकों की बैठक आयोजित हुई। यहाँ आस-पास से भी स्वयंसेवक आते रहे। 20 सितम्बर को संरक्षक श्री बाड़मेर के लिए रवाना हुए।

संघप्रमुखश्री श्री लक्ष्मणसिंहजी भी 19 सितम्बर को सुरेन्द्रनगर पहुँचे। गुजरात के विभिन्न संभागों में हो रहे संघ कार्य की जानकारी ली और उपस्थित स्वयंसेवकों से मिलकर चर्चा की। 25 सितम्बर को संघप्रमुखश्री सिरोही जिले के मांडाणी गाँव पहुँचे जहाँ वीरवर जेतसिंहजी बोड़ा का बलिदान दिवस मनाया गया था। 10 अक्टूबर को वीर पनराज जी के जयन्ती कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए जैसलमेर पहुँचे अगले दिन श्री शंकरसिंहजी महरोली की धर्मपत्नी के दाह-संस्कार में सम्मिलित होने जोधपुर पहुँचे। अगले दिन आलोक आश्रम बाड़मेर पहुँच गये और 13 अक्टूबर से प्रारम्भ होने वाले शिविर में आकोड़ा पहुँचे।

कई जगह प्राथमिक शिविर सम्पन्न हुए तो बालिका शिविर भी हुए। संघ तीर्थ दर्शन तथा ग्राम यात्राएँ सम्पन्न हुई। गुजरात में महिला स्नेह मिलन भी सम्पन्न हुए। क्षात्र पुरुषार्थ ने जालोर में 'जाति और जातिवाद' विषय पर सभी जातियों के प्रतिनिधियों को बुलाकर चर्चा की। थाटा में नागौर जिले के जन प्रतिनिधियों का दूसरा शिविर आयोजित किया गया। उदयपुर, नोखा, राजसमन्द में कार्य विस्तार बैठकें सम्पन्न हुई। साकड़ा में प्रतिभा सम्मान समारोह हुआ।

जानरा (जोधपुर) में माल्हण बाई स्मृति समारोह मनाया गया।

प्रताप फाउण्डेशन की ओर से 25 व 26 सितम्बर को आलोक आश्रम बाड़मेर में राजनैतिक रुचि के युवाओं का चिंतन शिविर रखा गया। 10 अक्टूबर को संघशक्ति प्रांगण में कांग्रेसी विचारधारा के समाज के युवाओं का विचार मंथन कार्यक्रम आयोजित हुआ। ❐

चलता रहे मेरा संघ

{माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा संघशक्ति प्रांगण में आयोजित विशेष शिविर में 1.9.2007 को उद्‌बोधित संदेश का संक्षेप}

हम बच्चे थे, अनेकों कार्य थे, अनेकों हमारे सपने थे। उस जीवन में परिवार द्वारा हमें डांटने की भी आवश्यकता रहती थी तो प्रेम भी चाहिए था। डांट भी मिलती, प्रेम भी मिलता। खेल की जगह खेलते भी रहते पढ़ाई की जगह पढते भी थे। इसलिए समरसता बनी रहती। अन्यथा हमारा जीवन एकांकी बन जाता, अविकसित रह जाता। अब मैदान बदल गया है, विषय बदल गया है पर खेल अभी भी जारी है। सांसारिक-चक्र के खेलों में अब हम रम गए हैं। जरा सोचें इन सांसारिक चक्रों में ही उलझे रहे तो श्री क्षत्रिय युवक संघ के लक्ष्य का क्या होगा, जिसको हमने स्वीकारा है?

अभी हमने सहगीत गाया था- **कुण कुण है थारै हिवड़ै में साथी।** पू. तनसिंहजी ने हमारे लिए करुणापूर्वक अपनी स्वयं की प्राथमिकता क्या है, वह बताई है। यह हमारे लिए भी प्राथमिकता बने, यही उनकी चाह है। पहली प्राथमिकता है-परमेश्वर। परमेश्वर के साथ योग यह प्रथम वरीयता है। उसी मार्ग पर चलें, वैसा ही जीवन बनाएँ जिससे योग फलित होता है। दूसरी वरीयता है-सामाजिक भाव। जिस समाज की अचिन्त्य क्रिड़ाओं से इतिहास भरा पड़ा है, उस समाज के प्रति क्या हमारा लगाव सुदृढ है? क्या उसके लिए पीड़ा है? फिर आता है श्री क्षत्रिय युवक संघ, जो उपरोक्त प्राथमिकताओं को हमारे जीवन में गहरा उतारने का मार्ग है। हम विचार करें कि इनमें से कौनसी प्राथमिकता हमारे जीवन की बनी है। यदि हमारी ये प्राथमिकताएँ नहीं हैं तो फिर कैसे नमन करें? कैसे स्वागत होगा?

पू. तनसिंहजी हमारे अन्दर ये प्राथमिकताएँ देखना चाहते हैं- परमेश्वर, सतोगुणीय जातीय भाव। हम जो काम कर रहे हैं, वह बड़ी कुशलतापूर्वक करते रहें पर परमेश्वर की याद सदैव बनी रहे। ईश्वर भी और संघ भी हमें निरन्तर बुला रहा है? पुकार रहा है। पर हम उस पुकार को सुन नहीं पा रहे। क्यों? क्योंकि हम ऐसे सांसारिक भोगों से चिपक गए हैं कि हमारे कान उस पुकार को सुन ही नहीं पाते। साधना-पथ पुस्तक सूत्रों में रची गई है। जो साधक है, उसके काम आती है। एक-एक कदम आगे बढाने में सहायता करती है। क्या वह साधक का भाव हमारा है, चिन्तन करें और अपनी स्थिति का आकलन करें। अन्तरावलोकन सतत् चलता रहे।

सामुहिक साधना प्रणाली में सखाभाव आवश्यक है, वही सामाजिक भाव को भी दृढ करता है। परन्तु सखाभाव का निर्माण मात्र ही लक्ष्य तो नहीं है, मंजिल तो योग की है। अत: सखाभाव की अगली सीढी समर्पण की आई तो तिलमिला गए कि यह तो पोंगापंथी है। हमारी प्रथम वरीयता परमेश्वर है तो क्या समर्पण के बिना वहाँ तक पहुँच जाएँगे? विनय नहीं आएगी तो कैसे किसी से कुछ सीख सकते हैं? कैसे कुछ मार्गदर्शन मिल पाएगा? अत: विनय की परम्परा बननी आवश्यक है।

सद्‌गुरु, हमारा अग्रणी सहयोगी ही हमें मार्ग बता सकता है, आवश्यक निर्देश दे सकता है। उसका सान्निध्य तो चाहिए ही, उसके प्रति समर्पण का भाव होगा तभी हमारी विनय उसके निर्देश पर हमें चला पाएगी। वह चाहे संघ प्रमुख हो, या सद्‌गुरु हो उसके प्रति हमारे भाव विनयी बनने ही चाहिए। तभी हम आगे बढने की सीख पाकर उसे जीवन में उतार सकते हैं।

पू. तनसिंहजी ने अनेकों गीतों की रचना की, जो हमें प्रेरणा देते हैं। साधना मार्ग में ये गीत सहायक बनते हैं। साधना-पथ, साधक की समस्याएँ आदि पुस्तकें हमें दी हैं यह उनकी हमारे प्रति करुणा का ही रूप है। संघ में ईश्वर की प्राथमिकता बताई जाती है तो कुछ लोग व्यंग करते हैं कि संघ में तो साधु बनाने की बात की जा रही है। लोग जो संघ को समझते नहीं, वे कुछ भी कहें हमें तो हमारी साधना को ही प्राथमिकता देनी है। इसलिए ईश्वर को सदैव स्मृति में रखते हुए संघ कार्य करना है। अपनी स्थिति का अन्तरावलोकन करते रहना है। ❐

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

''संघे शक्ति कलौ युगे'' यह सूत्र दर्शाता है कि कलियुग में संगठन में ही शक्ति है, सामर्थ्य है। कुछ कार्य संगठित शक्ति से ही संभव हैं, एक व्यक्ति के वश की बात नहीं यानी कुछ कर गुजरने की व्यक्ति में हूक तो जगती है, पर वह अकेला उस कार्य को कर नहीं पाता, तब उसे संगठन की यानी संगठित शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। दृष्टान्त के रूप में पूज्य श्री तनसिंहजी ने समाज जागरण में संगठन की आवश्यकता महसूस की। इसलिए संगठन का अपने आप में विशेष महत्त्व है।

पूज्य श्री तनसिंहजी के अनुसार ''संगठन के दो सूत्र हैं-पहला सूत्र है-एक से अनेक होने का। एक से अनेक होने का अर्थ है-वैयक्तिक सम्पर्क से अपने ही जैसे सैकड़ों लोगों का निर्माण करना अर्थात् अपने ही जैसे अनेक लोगों को बनाना ही एक से अनेक होने का अर्थ है। दूसरा सूत्र-अनेक लोगों को एक स्थान पर एकत्रित करना, उन्हें एक ध्येय, एक मार्ग, एक ध्वज, एक नेतृत्व और एक कार्य प्रदान करना ही अनेक से एक का सूत्र चरितार्थ करना है। न तो 'एक से अनेक' और न 'अनेक से एक' अकेला सूत्र संगठन कर सकता है। जब ये दोनों सूत्र परस्पर समन्वय करते हैं, तभी वास्तविक संगठन का स्वरूप निखर आता है और वही संगठन चिरकाल तक चलने का दावा कर सकता है।''

आज अर्थ और स्वार्थ का जमाना है। चारों ओर पाखण्ड व भ्रष्टाचार का बोलबाला है। कुसंस्कारी, स्वार्थी और भ्रष्ट लोगों का सत्ता में चलन है, जो अपना ही भला करने में लगे हुए हैं। इन कुसंस्कारी, स्वार्थी व भ्रष्ट लोगों से किस तरह निपटा जाये, यह एक चुनौती है? सत्ता के लोलुप मुट्ठी भर ऐसे लोगों से निपटने के लिए संगठन की आवश्यकता है और ऐसा संगठन उन्हीं लोगों का हो सकता है जो संस्कारित हों और पूज्य श्री तनसिंहजी द्वारा स्थापित श्री क्षत्रिय युवक संघ अपनी सामूहिक संस्कारमयी कर्मप्रणाली के माध्यम से लोगों को संस्कारित कर, संस्कारी लोगों को संगठित करने में लगा हुआ है। संस्कारित लोगों का संगठन ही इस भ्रष्ट तंत्र से मुक्ति दिला सकता है।

व्यक्ति के जीवन में पनपे कुसंस्कारों को धोने के लिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने सामूहिक संस्कारमयी कर्म प्रणाली को अपनाया। श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों व शाखाओं में आये हुए स्वयंसेवकों को सद्कर्म करने के लिए प्रेरित किया जाता है तथा साथ ही साथ सद्कर्मों का अभ्यास कराया जाता है। निरंतर व नियमित अभ्यास से ही सद् संस्कार आचरण में ढलते हैं और जीवन का हिस्सा बनते हैं। सच्चे, सुदृढ व स्थायी संगठन का आधार ही सद् संस्कार है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ में लगने वाले इन शिविरों की कड़ी में सद् संस्कार अभ्यास का एक माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर 25 दिसम्बर से 31 दिसम्बर, सन् 1965 में कालवी गाँव में चल रहा था। इस शिविर के दौरान एक घटना घटी। दोपहर के समय शिविरार्थी भोजन कर रहे थे। कुछ शिविरार्थी भोजन कर चुके थे और कुछ अभी कर ही रहे थे कि अचानक बड़े जोरों का धुआँ उठता दिखाई दिया। पता चला कि निकट में एक घर में आग लग गई है। पूज्य श्री तनसिंहजी के निर्देशन में शिविरार्थी दौड़ पड़े, उस बढती हुई आग को बुझाने के लिए। शिविरार्थियों में जो अधिक उत्साही और साहसी थे, वे अपनी जान की परवाह किये बगैर उस फूस के मकान पर चढ गये, जो जल रहा था और आग बुझाने में लग गये। कुछ शिविरार्थी, जो भी घड़े बाल्टियों आदि साधन उन्हें मिले, उनसे आग पर पानी फेंकने लग गये। कुछ शिविरार्थी अपने हाथों की अंजली (हथेलियाँ) में मिट्टी भर-भर कर फेंकने लगे। पूज्य श्री तनसिंहजी भी दौड़कर घटना स्थल पर जा पहुँचे और उन्होंने एक तगारी से आग पर मिट्टी डालनी शुरू की। किसी ने आकर उनसे तगारी ले ली, तो उन्होंने तत्काल अपना साफा

उतारा और उससे धूल भर-भर कर आग पर फेंकने लगे, तो किसी ने आकर उनसे साफा भी ले लिया और वे उससे स्वयं धूल फेंकने लगे। तब पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपना कमीज उतारा और उससे आग पर धूल फेंकने लगे, तो वहाँ खड़े लोगों ने उनसे उनका कमीज भी ले लिया, तो फिर पूज्यश्री ने अपनी बनियान उतारी और उससे धूल फेंकने लगे पर वह भी उनसे ले ली गई। अब उनके पास साधन रूप में अपने हाथ बचे थे। वे अपनी अंजली (हथेलियाँ) से रेत फेंकने लगे। संगठित शक्ति ने अपना दम दिखाया और थोड़ी देर में आग पर काबू पा लिया गया, फिर भी आग से जो हानि हुई उसे बहुत कम नहीं कहा जा सकता था। यदि यह शिविरार्थियों की संगठित शक्ति वहाँ उपलब्ध न होती तो आग पर काबू पाना बड़ा मुश्किल था और आस-पास के और घर आग की चपेट में आ जाते और भारी नुकसान हो जाता। जिस घर में आग लगी इसके बिल्कुल पास ही शिविर आयोजक के खेत में हजारों रुपयों की सम्पत्ति पड़ी थी, वह भी नहीं बच पाती।

इसमें विचारणीय बात यह है कि पूज्य श्री तनसिंह जी ने आग बुझाने के लिए अपनी कमीज उतारी, कमीज ले ली, तो बनियान उतारी। जब पूज्य श्री को अपने कमीज, बनियान उतारते देख, घटना स्थल पर खड़े उन शिविरार्थियों ने अपनी कमीज और बनियान क्यों नहीं उतारी? इसलिए नहीं उतारी कि कहीं उनके कपड़े धूल में गंदे न हो जाएँ या ये साधन उन्हें सूझे ही नहीं? उनके सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा–

''घटना स्थल पर खड़े हुए अपने आपको बिल्कुल साधनहीन मान रहे थे और इसीलिए केवल लोगों को काम करते हुए देखने का काम कर रहे थे। क्या सचमुच उनके पास कोई साधन नहीं था? साधन तो उनके पास था-अपना कमीज व बनियान, तो क्या ये साधन उन्हें दिखाई नहीं दे रहे थे? या फिर जान-बूझकर अपने साधनों को साधन ही नहीं मान रहे थे? साधन की न्यूनता हो सकती है, पर कर्म करने वाले के पास उसका सर्वथा अभाव कभी नहीं रहता। भाग्यशाली वे हैं जो साधन की न्यूनता पर झींकते नहीं, बल्कि जो कुछ साधन प्राप्त है, उसी से अपना कार्य करते रहते हैं।''

जब पूज्य श्री तनसिंहजी तगारी से आग पर मिट्टी डालने लगे तो किसी ने उनसे तगारी ले ली, तो उन्होंने अपना साफा उतारा और उससे धूल भर-भर कर आग पर फेंकने लगे तो उनसे उनका साफा भी ले लिया। फिर उन्होंने अपनी कमीज उतारी तो कमीज व बनियान उतारी तो बनियान भी उनसे ले ली गयी। शायद इसलिए ले लिये गये कि उनकी नजरों में पूज्य श्री बड़े आदमी हैं और इस तरह धूल फेंकते हुए अच्छे नहीं दिखते। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा–

''शायद उन्होंने मुझ से कपड़े इसलिए लिये कि उनकी नजरों में मैं एक 'बड़ा आदमी' हूँ और इस तरह धूल फेंकता हुआ अच्छा नहीं दिखता। दिखावे के इस थोथे विचार की छाया जिस किसी समाज पर पड़ी वह समाज झूठी प्रतिष्ठा का गुलाम बन जाएगा। हाथ से काम न करने का तथाकथित बड़प्पन किसी को भी परमुखोपेक्षी बनाए बिना नहीं छोड़ता। सच्चा बड़प्पन तो कर्म करने में है, न कि निकम्मा बनने में। लोगों की नजरों में मैं बड़ा हूँ-इसलिए नहीं कि कर्म करते मुझे लज्जा आती है, बल्कि इसलिए कि कर्म करते हुए ही मुझे गौरव अनुभव होता है। जब तक हम कर्म को प्रतिष्ठा नहीं प्रदान करेंगे, तब तक हमें भी प्रतिष्ठा कैसे मिल पायेगी।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया कि आग पर काबू पाने के बाद-''मैंने लोगों के मुँह से मेरी भी तारीफ सुनी है। पर सोचता हूँ-मैंने क्या किया? केवल अपने सीमित साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग किया, जो कोई भी कर सकता था। फिर भी पता नहीं मुझे कमीज, बनियान उतारते देख कर भी लोगों ने अपने कमीज, बनियान क्यों नहीं उतारे? आप सोचते होंगे, आप होते तो ऐसा ही करते। जरा गौर से देखिए! क्या आपके आसपास सर्वत्र आग नहीं लगी है? क्या हमारा समाज इस आग में जला नहीं जा रहा है? यदि हाँ तो क्या हम आवश्यकता को अनुभव करके भी चुपचाप खड़े देखते नहीं रहे हैं? क्या हम अपने साधनों का पूरा-पूरा सदुपयोग कर रहे हैं? कहीं साधनों का मोह हमें कर्म से रोक तो नहीं रहा है? कार्य न करने के झूठे बड़प्पन ने हमें दबोच तो नहीं रखा है?''

(क्रमशः)

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण–101

दीपक का महत्त्व जलने में है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शरीर का महत्त्व कार्य करने और आत्मा का महत्त्व ज्ञान की पहचान में! कार्यरहित शरीर में निरुपयोगिता, ज्ञान रहित आत्मा में मूढता और दीप्तिरहित दीपक में मिट्टी के आकार की स्थूलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं शेष रहता। तब मेरी साधना का दीप इसलिए नहीं जले कि जलकर वह किसी का उपकार करता है वरन् इसलिए जले कि जल कर वह स्वयं उपकृत और महत्त्वशाली बनता है।

प्रकाश, श्रम, ज्ञान विहीन, दीपक, शरीर, आत्मा।
कर्तव्यभाव विहीन जीवन की नहीं सार्थकता।।

दीपक, शरीर, आत्मा की उपयोगिता–निरुपयोगिता समझाता हुआ अवतरण है। जैसे बिन्दु में सिन्धु समाया हो, वैसा लगता है। यहाँ दीपक का अर्थ भौतिक प्रकाश देने वाले दीपक की जगह साधना का दीपक यानी प्रवृति अर्थात् श्री क्षत्रिय युवक संघ समझें। दीपक, शरीर, आत्मा का अर्थ व्यक्तिगत अथवा समष्टिगत रूप में लिया जा सकता है।

दीपक का महत्त्व प्रकाशित रहने, अर्थात् अन्धेरा हटाकर प्रकाश देने, उजियारा करने में है। यदि दीपक का अर्थ प्रवृत्ति से लें तो केवल क्षत्रिय युवक संघ ही नहीं, समाज क्षेत्र में समाज के हित को लक्ष्य बनाकर कार्यरत सभी संस्थाओं के बारे में सोचें तो सामाजिक दृष्टिकोण से ज्यादा उपयोगी रहेगा। संस्था या प्रवृति सतत्, निरंतर, नियमित कार्य करके मार्गदर्शन द्वारा समाज को प्रगति, विकास के मार्ग पर चलावे तो संस्था की प्रवृति की उपयोगिता है। जो संस्था या प्रवृति सतत कार्य करके समाज हित में न लगे तो वह प्रकाश न देने वाले अंधेरा न मिटाने वाले दीपक जैसी ही है।

समष्टिगत रूप से चर्चा करें तो शरीर का अर्थ समाज शरीर है। यानी पूरा समाज काम न करे, बैठकर खाने वाला बन जाए तो वह निरुपयोगी बन जाएगा। उपयोगिता के बिना समाज के अस्तित्व को खतरा है। अंग्रेज शासन में हम लोग नशे और खुसामद के आदी बनकर खत्म हो गए। हम सत्ता, सम्पत्ति, आदर, मान आदि अपनी अकर्मण्यता, अनुपयोगिता के कारण गंवा बैठे। इस परिणाम से बोध लेकर हम उद्यमी बनें, कर्मशील बनें, पुरुषार्थी बनें तो खोया हुआ सभी या बहुत कुछ प्रभाव पुन: प्राप्त किया जा सकता है। हम मिट्टी के आकार के दीपक से जलता हुआ दीपक बनें, यही बात अवतरण में कही गई है।

आत्मा किसी भी संस्था के सूत्रधार को माना जा सकता है। संचालक या सूत्रधार पठन, अभ्यास और अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करे। उस ज्ञान से समाज को समृद्ध बनाने के लिए कार्यरत रहे। यह सभी संस्थाओं पर लागू होने वाली बात है पर कितनी संस्थाओं के संचालक इस कक्षा में आ सकते हैं? मेरी साधना के अवतरण ऐसा चिन्तन करने हेतु समाज को बोध देते हैं।

सामाजिक हित में कार्य करने वाली संस्था को ऐसे भाव से दूर रहना चाहिए कि संस्था किसी पर उपकार कर रही है। कार्य को अपना कर्तव्य मानकर सेवा भाव से सक्रिय रहना चाहिए। इसी में संस्था की सार्थकता व सफलता है।

व्यक्तिगत रूप से बात करें तो साधक साधना में निरंतर, सतत् सक्रिय रहेगा तभी वह जलता दीपक है। इसी में उसके साधक जीवन की सार्थकता है। साथ ही यह भी भाव बना रहे कि मैं साधनारत रहकर किसी पर उपकार नहीं कर रहा, यह तो मेरा कर्तव्य है। उसे तो प्रभु का आभार प्रकट करना चाहिए कि हे प्रभु! आपने कृपा करके मुझे अपना जीवन सार्थक बनाने का, सेवा

करने का अवसर दिया है, मुझे मेरे कर्तव्य मार्ग पर चलाया है। निस्वार्थभाव से, निष्ठापूर्वक, समाजहित के कार्य हेतु क्षत्रिय युवक संघ से प्रेरणा लेकर संकल्पबद्ध बनें। छोटा-सा वर्ग भी ऐसा संकल्प कर ले तो पू. तनसिंहजी के सहगीत की पंक्ति सार्थक बने।

अब ऊषा ने ली अंगड़ाई, इस बस्ती में मस्ती छाई।
अरे कौम के भाग्य में अब तो आया नया प्रभात।।

अवतरण-102

मेरी साधना का दीप स्वयं को खाकर जलता है-तभी वह समाज को प्रकाश, उष्णता और मार्गदर्शन देने में समर्थ है। अन्धकार की उपस्थिति से उसे कोई भय नहीं, वायु के झोंकों से बुझकर भी वह पुनर्दीप्त हो सकता है, पर यदि वह स्वयं को खाना छोड़ दे तो उसके अस्तित्व की रक्षा में स्वयं ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हो सकते। तब हमें समाज कल्याण और अपने स्वयं के अस्तित्व के लिए निरंतर अपना क्षय करते रहना पड़ेगा।

स्वत्व और सत्व गुमादे जो जाति।
रक्षा उसकी कर न सके प्रजापति।।

'मेरी साधना का दीप स्वयं को खाकर जलता है' अर्थात् प्रकाश देता है। इस वाक्य से प्रारम्भ होते अवतरण में क्या कहना चाहते हैं, उसे समझने के लिये ज्यादा सोचने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जिस दीपक में तेल हो, वही दीपक तो प्रकाश देगा। तेल के बिना तो दीपक जलता ही नहीं, तो प्रकाश कैसे देगा?

यह अवतरण ही नहीं, पूरी पुस्तिका श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति के प्रकाश का परिचय देती है। इन अवतरणों की चर्चा में हम अपनी अन्य सामाजिक संस्थाओं के लिए प्रेरणाप्रद अर्थघटन करके मार्गदर्शन करने का प्रयास करते हैं। जो प्रवृति स्वावलम्बी हो, स्वबल से जूझती हो वह प्रवृति ही समाज को प्रकाश, उष्णता और मार्गदर्शन दे सकती है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति स्वबल पर जूझती और अन्य सामाजिक प्रवृतियों को प्रेरणा देती हुई प्रवृति है। ऐसी प्रवृति को 'अंधकार की उपस्थिति से कोई भय नहीं' इसीलिए अंधकार रूपी कैसी भी बाधा हो उसे रुक जाने का या बन्द हो जाने का कोई भय नहीं है। संयोगानुसार उसमें शिथिलता आए, गति मंद पड़ जाए, लगता हो जैसे प्रवृति बन्द हो जाएगी, तो भी जैसे बुझा हुआ दीपक पुन: प्रकट (प्रज्वलित) कर सकते हैं, उसी तरह वह प्रवृति भी अपने पैरों पर खड़ी हो जाकर समाज के लिए उपयोगी हो जाती है।

'पर यदि वह स्वयं को खाना छोड़ दे तो उसके अस्तित्व की रक्षा में स्वयं ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हो सकते।' अपने स्वयं को खाना छोड़ने का अर्थ है कर्तव्य, उत्तरदायित्व, स्वधर्म, क्षात्रधर्म को छोड़ना। ऐसी स्थिति में वह प्रवृति जीवित नहीं रह सकती, स्वयं ब्रह्मा भी उस जाति की रक्षा नहीं कर सकते। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है और इसको गंभीरता से सोचना व समझना होगा। आज की हमारे समाज की स्थिति क्षात्रधर्म का मार्ग छोड़कर जीवित रहने की इच्छा रखने की है। क्षत्रिय के जीवित रहने की शर्त है क्षात्रधर्म का पालन, यह संकेत यह अवतरण देता है जिसे समझने की आवश्यकता है। क्षात्रधर्म के मार्ग पर स्वबल से चलनेवाली प्रवृति ही जिन्दा रहेगी और स्वयं को खाकर, अर्थात् अपनी समस्त सांसारिक इच्छाओं को दर किनार कर साधक निरन्तर बढता रहेगा, उसी की साधना अनवरत चलेगी तथा समाज में प्रकाश फैलायेगी।

अवतरण का अन्तिम वाक्य है-'तब हमें समाज-कल्याण और अपने स्वयं के अस्तित्व के लिए निरंतर अपना क्षय करते रहना पड़ेगा।' अपना क्षय करते रहने से अर्थ है निरन्तर साधना में घिस कर निखार पाना। सीधी समझने जैसी बात है। व्यवहार में हम देखते हैं कि जो घिसता है वह चमकता है। धातु के बर्तनों को घिसकर माँजने पर उनमें चमक आती है जो घर में चमकदार शोभा देते हैं। पत्थर (हीरा) घिसने पर चमकता है और आभूषण बनकर शोभा देता है। ऐसे ही साधक भी निरन्तर साधना रत रहकर निखार पाता है। पर आज स्वप्रकाश से शोभायमान होना भूलकर मनुष्य दूसरों के प्रकाश से शोभित होना चाहता है। हम त्याग और बलिदान की

घिसावट को छोड़कर क्षात्रत्व को जीवन में नहीं टिका पाएँगे। हम संकल्प करें अपने और समाज के अस्तित्व के कल्याण के लिए निरंतर साधनारत रहेंगे।

श्री क्षत्रिय युवक संघ सामुहिक संस्कारमय कर्म प्रणाली द्वारा पथ विचलित वर्ग को, समाज को, कौम को त्याग और बलिदान के मार्ग पर चलने के लिए अविरत रूप से भागीरथ प्रयास कर रहा है। उसमें सहभागी बनने के संकल्पवान बनें।

अर्क– घिसकर उजले बनकर दूसरों को उजाला देना,
यही मानव जाति का मूलभूत आदर्श है।।

अवतरण–103

एक कामना है-मेरी साधना का दीप निरंतर जलता रहे, काल और परिस्थिति–निरपेक्ष होकर जलता रहे,–अपने को जलाकर, अपना सर्वस्व भष्म कर जलता रहे,– बस जलता रहे और यदि कभी महाकाल रूपी प्रचण्ड पवन–वेग के समक्ष उसे बुझने को विवश होना पड़े तो बुझने के पूर्व अपने जैसे सहस्रों दीपकों को प्रदीप्त होकर निर्धूम जलना सिखा दे।

सर्वस्व के बलिदान से समाज में उजाला करूँ।
मरने से पहले हजारों को उस रास्ते चलना सिखाऊँ।।

सौवें अवतरण में प्रारम्भ की हुई दीपक और प्रकाश की बात इस अवतरण में पूर्ण करते हुए साधक कहते हैं-एक कामना है-'मेरी साधना का दीपक निरंतर जलता रहे'। अर्थात् मेरी साधना यानी प्रवृति कार्य, जो जनहित, जगहित के लिए प्रारम्भ किया है वह हर परिस्थिति में, हर संयोग में भी चलता रहे। उसके लिए जो कुछ भी भोग रूप में त्याग–बलिदान देना पड़े वो देकर, स्वयं के सर्वस्व को भष्म करके भी चलता रहे। यह साधक की तमन्ना है।

यदि किसी विकट संयोग से, अणचिति आफत के कारण प्रवृति बन्द होने की परिस्थिति बन जाए तो भी यह प्रवृति सदा चलती रहे, समाज को, राष्ट्र को सन्मार्ग दिखाती रहे, इसके लिए सर्वस्व का भोग (बलि) देकर प्रवृति हेतु समर्पण के साथ, लगन व तत्परता के साथ निरंतर कर्मरत रहें, ऐसे हजारों लोग तैयार कर देने चाहिए। ऐसा इशारा साधक का इस अवतरण में है, यही समझ में आता है। साधक की व्यक्तिगत साधना की दृष्टि से अपने महाकाल का ग्रास बनने से पूर्व अनेकों समर्पित साधक तैयार कर दिए जाएँ जो दीपक की तरह निर्धूम जलते रहें। अर्थात् कर्मरत रहें पर निर्धूम यानी किसी भी प्रकार के शिकवे शिकायत न हो।

यह कोई कल्पना मात्र नहीं है, सामने दिखता सत्य है। 1946 की 22 दिसम्बर को पू. तनसिंहजी ने अपने त्याग, तप, पुण्य और सामर्थ्य से श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति प्रारम्भ की थी। आज वे स्वयं नहीं हैं परन्तु श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति कितनी विकसित हुई है, उसमें कार्यरत कितने समर्पित साधक हैं, यह स्पष्ट है। 19 मई, 2015 को द्वारिका में शुरू हुए शिविर में 700 की संख्या इसका प्रमाण है। पू. तनसिंहजी एक गीत में कहते हैं,–

सफल बनूं या नहीं बनूं मैं फिर भी बहता जाता हूँ।
अपने तप की ले मशाल मैं ज्योति जगाता आता हूँ।
हारे अर्जुन को कर्मयोग का पाठ पढाने आया हूँ।।

गीत की पंक्ति में स्वयं के तप की मशाल द्वारा प्रकाश फैलाने की बात कही है। स्वयं के तप की बात को लक्ष्य में रखकर हमारी सामाजिक संस्थाओं के सूत्रधारों, संचालकों द्वारा समाज व संस्था की भलाई के लिए थोड़े पुण्य, तप, त्याग की कमाई की जाए तो प्रवृति प्रभावशाली बनकर समाज के सफल उज्ज्वल भविष्य हेतु समर्थ बने।

यह तप क्या है? यहाँ तप से अर्थ कोई व्रत रखने, उपवास करने, जागरण करने या धूणे पर तपने से नहीं है। यहाँ तप का अर्थ है कि हम जो प्रवृति कर रहे हैं वह सत्कर्म, सद्प्रवृति, सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय हो और उसमें आने वाले विरोधों, संकटों, अवरोधों, मुसीबतों, टीका–टिप्पणी पर मूक रहकर, हँसते हुए सहन करना और कर्मरत बने रहना।

एकबार एक शिविर में एक सामाजिक अग्रणी निरीक्षण हेतु पधारे। उन्होंने कहा ऐसे कष्ट दायक शिविरों

में संख्या नहीं होती है। उचित ढंग के स्थान पर सुविधाजनक व्यवस्था के साथ शिविर रखा जाए तो अच्छी संख्या होगी। उनकी बात सुनी, उत्तर किसी ने नहीं दिया। ऐसी माँग करने वाला वर्ग तो बड़ा है पर ऐसी माँग करने वालों में से किसी ने भी सुविधापूर्ण शिविर का आयोजन किया नहीं है।

बड़ौदा से भी एक बन्धु क्षत्रिय युवक संघ के एक कार्यक्रम में आए। कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद वे बोले कि ऐसा कार्यक्रम समाज के अग्रणियों के लिए रखा जाए तो उसकी व्यवस्था व खर्च की जिम्मेवारी मैं निभाऊँगा। यह तो एक चार-छः घण्टे के कार्यक्रम की बात है। शिविर तो पाँच या सात दिन का होता है। तीन सितारा या पाँच सितारा सुविधा माँगने वाले पच्चीस सज्जन पाँच दिन के लिए शिविर में रहने को तैयार हों तो प्रयोग करने जैसा है। छोटे-छोटे अवतरणों में मंथन करके बहुत कुछ नवीन ज्ञान एकत्रित किया जा सकता है। परन्तु हमारे पास अभाव समय का है और बहाना बनाते हैं सुविधाओं का। हम समाज हित के लिए समय निकालने का संकल्प करें, समाज सद्नसीब बन जाएगा।

अर्क- समय का सदुपयोग करने वाला सफलता को प्राप्त करता है।

अवतरण-104

बीज के लघु आकार में छाया, शीतलता और मधुर फलदायी विशाल वृक्ष समाहित है-इसलिए उसका महत्त्व नहीं, और इसलिए भी नहीं कि वह वृक्ष की उत्पत्ति का कारण है, वरन् उसका महत्त्व इस बात में है कि उसमें अपने जेसे सैकड़ों बीजों के निर्माण की शक्ति भरी पड़ी है। पर ऐसे सैकड़ों बीजों के निर्माण के पूर्व उसे अपने अस्तित्व का नाश करना पड़ेगा-तभी तो जाकर वह अपने सैकड़ों रूपों को देखने में सफल हो सकेगा।

मर कर जी जाता है, उसकी गाथा रची जाती है।
एक का अनेक रूप, जग को भेंट कर जाता है।।

गत चार अवतरणों में दीपक और प्रकाश के माध्यम से त्याग, बलिदान और समर्पण द्वारा समाज के लिए, देश-धर्म-संस्कृति के लिए सर्वस्व होम करने का संकेत और प्रेरणा दी गई। इस अवतरण में वृक्ष के एक बीज के माध्यम से समर्पण की उच्च भूमिका को समझाने का प्रयास किया गया है। गत अवतरण में प्रचण्ड वायु वेग से बुझ जाने से पहले हजारों दीपक प्रकट करने की बात कही। अब बीज का महत्त्व समझाते हुए साधक कहते हैं कि बीजों में छाया, शीतलता और मधुर फलदायी विशाल वृक्ष समाहित है। लेकिन उसका महत्त्व तो इसलिए है कि उसमें अपने जैसे सैंकड़ों बीजों के निर्माण की शक्ति भरी पड़ी है। पर इसके लिए पहले उसको अपना अस्तित्व मिटा देना पड़ता है। ईश्वर एक से अनेकों का सृजन करता है, पर वहाँ अस्तित्व मिटाने की बात ही नहीं। वह तो पूर्ण है, सृजन करने के बाद भी पूर्ण है। वह तो सर्वशक्तिमान है। तब नजर श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति पर चलने वालों की बात पर आती है। साधक अपना समर्पण प्रवृति हेतु कर काम करता है तब उसका अलग अस्तित्व समाप्त हो जाता है। वह प्रवृतिमय बन जाता है और परिणाम स्वरूप अनेक साधकों को हमराही बना लेता है।

इतिहास का अध्ययन नहीं है पर पढी या सुनी समाजहित या राज्यहित के लिए अपना अस्तित्व मिटा देने की दो घटनाएँ भी हम समझ लें। मेवाड़ में सलूम्बराधीश की मान्यता और वर्चस्व देखकर महाराणा को उनकी वफादारी पर शंका होती है। महाराणा उनको लेकर दूर जाते हैं और कहते हैं-मेरे हाथ में दो गोलियाँ हैं जिनमें से एक जहर मिश्रित है। राज्य में हम दो में से एक ही रहना चाहिए। एक आप ले लो, एक मैं लेता हूँ। सलूम्बरापति बात समझ गए और महाराणा के हाथों से दोनों गोलियाँ झपट कर निगल गए। अपना अस्तित्व मिटा कर राज्य को अकारण संघर्ष से बचा लेते हैं।

दूसरा दृष्टान्त है मगध साम्राज्य का। महामंत्री शकटाल का पुत्र श्रियक मगधपति का अंगरक्षक है। ईर्षावश

(शेष पृष्ठ 26 पर)

गतांक से आगे

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

पृथ्वीराज पर ऐतिहासिक स्रोत :

इस अंक में हम पृथ्वीराज चौहान के इतिहास पर प्रकाश डालते कुछ प्रसिद्ध ग्रंथों का आंकलन शुरू करेंगे, क्योंकि आगे इनका भरपूर प्रयोग होगा।

जयानक कृत पृथ्वीराज विजय :

इतिहास पर किसी भी अनुसंधान में तत्कालीन स्रोतों पर इतिहासकारों द्वारा सर्वाधिक बल देना तर्कसंगत है क्योंकि अन्य की तुलना में ये स्रोत प्राय: अपनी विषयवस्तु के प्रत्यक्ष प्रमाण होते हैं। ऐसा ही एक ग्रन्थ है काव्यात्मक शैली में लिखा गया पृथ्वीराज विजय। इस ग्रन्थ के आंतरिक साक्ष्यों व टीका के आधार पर इसके रचयिता जयानक को पृथ्वीराज चौहान की राजसभा का कश्मीर से आया एक कवि माना गया है।

यूँ तो जयानक ने राजकवि होने पर चौहानों के गुणगान में नाना प्रकार की अतिशयोक्तियों का अधिकार-पूर्वक प्रयोग किया है किन्तु फिर भी ग्रन्थ के ऐतिह्य तत्वों के आधार पर इतिहासकारों का निष्कर्ष है कि पृथ्वीराज विजय न केवल चौहान शिरोमणि के समकालीन है, बल्कि उनसे पूर्व के चौहान इतिहास के लिए भी सबसे सटीक ग्रंथ है। अन्य शिलालेखों, सिक्कों व ग्रंथों के साक्ष्य से पुष्टि होने में इस ग्रन्थ की सफलता सर्वाधिक है।

पृथ्वीराज विजय महाकाव्य की रचना तराइन के प्रथम युद्ध (जिसमें पृथ्वीराज विजयी हुए) के बाद पूरी हो गयी थी। आधार है ग्रन्थ के नाम में 'पृथ्वीराज' और 'विजय' होना व 12वीं सदी ईस्वी के अन्त में एक अन्य कश्मीरी विद्वान जयरथ के द्वारा (उनके काव्य संग्रह 'विमर्शिनी' में) पृथ्वीराज विजय का उल्लेख आना।

सदियों से लुप्त पृथ्वीराज विजय जर्मनी के एक प्राच्य विद्याशास्त्री जॉर्ज व्यूहलर को 1875 ईस्वी में अपनी कश्मीर यात्रा पर मिला। जो प्रति मिली है वो अपूर्ण तो है ही, इसके क्षत विक्षत भोजपत्रों पर अंकित कई श्लोक अब समझने योग्य स्थिति में नहीं हैं।

उपलब्ध 12 सर्गों के अलावा इस ग्रन्थ के कई अन्य सर्ग थे जो अब लुप्त हैं। आज उपलब्ध ग्रन्थ ही यदि पूर्ण होता तो न केवल ग्रन्थ का नाम व पृथ्वीराज का ज्ञात इतिहास परस्पर बेमेल हो जाते। साथ ही कवि द्वारा राजा को श्री राम का अवतार बताने में अनेकों बार विस्तृत प्रयास करने, पृथ्वीराज को असुरों के विनाश की कथा कहकर प्रेरित करने का भी कोई अर्थ नहीं बनता। इस तुलनात्मक चित्रण की परिणति यही थी कि रघुकुल शिरोमणि प्रभु श्री राम की भाँति पृथ्वीराज भी आगे चलकर म्लेच्छों (गोरी) का मर्दन करें। सो केवल इस आधार पर कि 12वें सर्ग में रचयिता जयानक का प्रवेश हुआ, इस ग्रन्थ विशेष के मुखर साक्ष्यों को ठुकरा कर ये नहीं माना जा सकता कि 12वाँ सर्ग अन्तिम था। बाद में कश्मीरी विद्वान जोनराज ने पृथ्वीराज विजय पर टीका भी लिखी और वही ग्रन्थ की एकमात्र उपलब्ध प्रति है।

फिर भी पृथ्वीराज विजय की प्राप्ति 20वीं सदी के विद्वानों पर इतनी प्रभावशाली रही, कि राजपूत काल (600-1200 ईस्वी) के इतिहास की समझ में बड़े बदलाव हो गए। इस उलटफेर में जिस साहित्यिक दिग्गज का एक प्रकार से पतन हुआ उसका नाम पृथ्वीराज रासो है।

मिथकों की गंगोत्री-पृथ्वीराज रासो :

ये कहना अतिशयोक्ति नहीं कि पृथ्वीराज रासो का उल्लेख आए बिना पृथ्वीराज चौहान पर कोई बात पूरी नहीं हो सकती। इससे वृहत समाज में संदेश देते हुए पृथ्वीराज की स्मृति को अमर बनाने में रासो की मुख्य भूमिका तो सिद्ध हो जाती है किन्तु चौहान कुलदीपक के इतिहास वर्णन में रासो की विश्वसनीयता नहीं।

'रासो' काव्य शैली आख्यान-साहित्य में बहुत प्रचलित थी, जहाँ बात को सभी के लिए ग्राह्य बनाने हेतु रचनाओं में तथ्यों व मिथकों का अनूठा मिश्रण पाया जाता है। अर्थ ये है कि स्वयं रासो के रचयिता (ओं) ने कहीं भी इस कृति में सटीक इतिहास होने का उद्घोष नहीं किया।

तथाकथित चंदवराई भाट (मध्ययुगीन आख्यान गायक) कृत पृथ्वीराज रासो ने वीर रस में विहंगम वर्णन शक्ति दिखाकर अपने काव्याधिकार का मान अवश्य रखा है। ये रासो का ही कथन है कि चंदवराई पृथ्वीराज के समकालीन थे।

पर आगे हम देखेंगे कि महाकाव्य रासो बनने या बनाना शुरू होने के बाद जिन-जिन लोगों के हाथ में आया, उन्होंने बार-बार इतिहास के पटल पर स्वार्थपूर्ण शूलारोपण के लिए किन विचित्र ढंगों से रासो का दुरुपयोग किया।

रासो की भाषा भी अपने आप में शोध व विवाद का विषय रही है। शोधकर्ताओं में मतभेद तो अपनी जगह है ही, रासो की भाषा तो एक से दूसरे अध्याय में जाने तक भी बदल जाती है। उदाहरण के लिए इन प्रसिद्ध पंक्तियों को लें:

चार बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
ता ऊपर सुल्तान है, चूको मत चौहान।।

यहाँ भाषा खड़ी बोली है जो शौरसेनी अपभ्रंश के ठीक बाद के काल की ओर इंगित करती है। रासो के अधिकतर छंद दोहे भाषाविदों व इतिहासकारों ने इसी प्रकार ब्रज, पिंगल व राजस्थानी भाषा के प्राच्य रूप से जोड़कर देखे हैं। पर इतना तो निश्चित व स्पष्ट है कि उपरोक्त उदाहरण की भाँति रासो का बड़ा भाग बाद में हुए प्रक्षेपों का परिणाम है। रासो पर कई विद्वानों के अध्ययन का एक निष्कर्ष ये भी निकला है कि इसके (वृहत संस्करण में) लगभग 10% शब्द फारसी या अरबी मूल के हैं।

इससे भी रासो पर समय-समय पर हुए घात दिखाई दे जाते हैं। लिखित रासो की मुख्य/मूल भाषा को जो भी नाम दें, वो प्रकृत पैंगलम की भाषा से अधिक विकसित यानी उसके बाद की है। चूंकि प्राकृत पैंगलम 14वीं सदी में पूरा हुआ। इसलिए रासो यात्रा का आरम्भ 15वीं-16वीं सदी में रखना युक्तिसंगत बनता है।

पर साथ ही श्री मोतीलाल मेनारिया व कुछ अन्य विद्वानों के इस कथन से जटिलता आ जाती है कि रासो में कुछ अंश प्राच्य डिंगल में लिखे मिलते हैं। इससे रासो को पूर्ण रूप से 16वीं सदी या उसके बाद रखने में प्रतिरोध आता है।

यह उहापोह क्या कम थी कि रासो एक ही शब्द के तीन-चार रूप दिखा ये पेंच भी लगा देता है कि एक लम्बे कालखंड में शनै शनै इस ग्रन्थ के अनेकों कर्ता-धर्ता हुए।

बात यहीं नहीं रुकती, रासो की प्रतियों का संकलन देखें तो सैंकड़ों की संख्या में है और इन्हें चार संस्करणों में बँटा माना गया है। हर संस्करण अपनी ढपली अपना राग के पथ पर अलग-अलग भाषा, शब्द-चयन और विषयवस्तु पर भिन्न दृष्टिकोण लिए है। स्वाभाविक है कि इस कारण रासो की ऐतिह्य सामग्री जैसे व्यक्ति व घटनाएँ एक से दूसरे संस्करण में प्रकट या लुप्त हो जाते हैं। इस खिचड़ी का प्रभाव ये हुआ कि रासो पृथ्वीराज चौहान से जुड़े अधिकांश विवादों की जड़ बन गया।

रासो के चार संस्करण इस प्रकार हैं -

1. लघुतम संस्करण जिसमें 1300-1400 छंद हैं
2. लघु संस्करण जिसमें 4,000 तक छंद हैं
3. मध्यम संस्करण 10,000-11,000 छंद
4. वृहद संस्करण 26,000-1,00,000 छंद

रासो के अस्तित्व का सबसे पहला प्रमाण उसकी प्राच्यतम उपलब्ध प्रति है जो कि 1610 ई. में लिखी गयी थी और धारणोज में मिली। इस प्रति की पुष्पिका में इसके एक अन्य प्रति से उतरे जाने का उल्लेख है। यानी यदि उपलब्धता का नियम हटाएँ तो प्राच्यतम प्रति 20-30 वर्ष और पीछे की होगी, सो हमें 1500-1600 ई. का समय मिलता है।

पर ये केवल लिखित रासो की काल गणना है। दो बातें ध्यान देने योग्य है।

1. 17वीं सदी के आरम्भ तक रासो के अधिकांश संस्करण प्रकाश में आ गए थे। रासो की प्रतियों के बीच और प्रति के भीतर भी भाषा के पर्याप्त परिवर्तन उसकी ग्रन्थ यात्रा के आरम्भ में ही लेखनी में विविधता (अनेकों लेखक होना) बताते हैं।

2. रासो 1590 ई. तक मुख्यधारा में प्रचलित हो गया था (रजवाड़ों के लिए इसकी प्रतियाँ बनना)।

इन सब से अनुमान लगता है कि राजस्थान के भाटों में रासो का मौखिक अस्तित्व 1590 ई. के 100 वर्ष पूर्व भी रखा जा सकता है। **(क्रमशः)**

गतांक से आगे

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

काल्पनिक भय :

एक युवक ने अपने काल्पनिक भय की कथा को सुनाना प्रारम्भ किया, 'आपको मेरी कहानी सुनकर हँसी आएगी, परन्तु उन दिनों मेरे भय की कोई सीमा न थी। तेज हवा चलने पर मुझे भय होता कि कहीं मेरे घर की छत ही न उड़ जाए। बादलों की गर्जना सुनकर मुझे मृत्यु के सदृश आघात पहुँचता। नरक-यातना का वर्णन सुनकर मैं मरणोपरान्त नरक-भोग की पीड़ा की कल्पना करने लगता। कर्मचारीगण यदि आदेशों के पूरा करने में विलम्ब करते, तो मैं चिन्तित हो जाता कि इन आलसी कर्मचारियों के साथ मैं कैसे काम करूँ। मुझे आशंका होती कि उन्हें किसी प्रकार का दण्ड देने पर कहीं वे मुझ पर आक्रमण न कर बैठें। मैं कल्पना करता कि मेरे चलने का ढंग देखकर लड़कियाँ मेरा उपहास करती हैं। मैं निरंतर इस बात से चिन्तित था कि कभी कोई लड़की मुझसे विवाह करना पसन्द नहीं करेगी। मैं चिन्तित था कि ससुराल में मैं कैसा आचरण करूँगा। मैं कल्पना करता कि यदि मेरी पत्नी गाँव की होगी, तो उसके घर की ओर जाने वाली निर्जन सड़क से होकर जाते हुए डाकू मुझ पर प्रहार करके मुझे लूट लेंगे और मैं इससे आतंकित हो उठता।'

एक बार मेरे एक मित्र ने एक और घटना बताई, 'लगता है कुछ दिन पूर्व हमारे पड़ोसी को साँप ने डँस लिया। लोगों ने कहा-''वह साँप के डँसने के एक-आध घण्टे के भीतर ही मर गया। हमें सावधान रहना चाहिए। इस क्षेत्र में अक्सर ही साँप निकलते रहते हैं।'' यह सुनकर मैं साँप के भय से अभिभूत हो गया। मैंने एक टाच खरीद ली और शाम को नगर में आते समय सदैव उसे साथ रखने लगा। कोई आहट मिलने पर मैं भय से उछल पड़ता। बिस्तर पर सोते समय भी मुझे भय लगा ही रहता था। मैं प्रति घण्टे उठकर टार्च जलाकर चारों ओर देखता। मेरा मन साँप के भय से आतंकित था। साँप कहीं मेरे पैर में न काट ले, इस भय से मैं पैर के चारों ओर रस्सी बाँध लेता, परन्तु यदि वह सिर में डस ले, तो? मैं भय से टूट गया। छह महीनों तक मैं कहीं भी जाते समय अपने साथ टार्च ले जाता रहा, पर एक बार भी मुझे कोई साँप दिखाई नहीं पड़ा। अब मैं खुद पर शर्मिन्दा था। अपने मन को भय की अनावश्यक कल्पनाओं से भर लेने के कारण मुझे खुद पर हँसी आने लगी। मुझे लगा कि ऐसे भयों को आश्रय देकर, जिनमें से एक भी सत्य सिद्ध नहीं हुआ, मैंने कैसी मूढ़ता दिखाई है।'

पके हुए चावलों में एक कंकड़ मिल जाने का अर्थ यह नहीं कि पूरा चावल ही कंकड़ों से भरा पड़ा है। यदि दो-एक विपत्तियाँ आ जाएँ, तो इसका अर्थ यह नहीं कि सारा जीवन ही संकटमय है। यदि हममें थोड़ी तर्कशक्ति तथा विवेक हो, तो हम इस काल्पनिक भय से स्वयं को मुक्त कर सकते हैं।

तनुजा का भय :

इसी प्रकार के काल्पनिक भय ने तनुजा को दो वर्षों तक त्रस्त किए रखा। वह दो बच्चों की माँ थी और सदैव उनकी सुरक्षा के बारे में चिन्तित रहती। सवेरे स्कूल जाते समय वह बच्चों को बारम्बार चेताती, 'मोटर-गाड़ियों से सावधान रहना, अन्यथा कुचले जाओगे।'बच्चों के मोटरों से कुचल जाने की कल्पना उसके मन को बारम्बार व्यथित कर देती। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वह रसोईघर से निकलकर देखती कि सड़क पर कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी। इसके फलस्वरूप किसी दिन दाल में नमक नहीं पड़ता, तो कभी सब्जी बिना मसाले के रह जाती। घर के सारे कार्य अस्त-व्यस्त हो जाते। वह विचित्र भुलक्कड़पन से ग्रस्त हो गयी। हर रोज ऐसा ही होता।

एक बार उसके पति ने उससे कहा, 'क्या तुम पागल हो गयी हो? यदि तुम्हारी आशंका सच होती, तो इन दो वर्षों के दौरान सड़क पर चलते हुए कितने ही बच्चे कुचलकर मर गए होते। तुम बेकार ही चिन्तित रहती हो।'

तनुजा ने कहा, 'हाँ, दुर्घटनाएँ नित्य नहीं हुआ करतीं।' और क्रमश: वह काल्पनिक भयों से मुक्त हो गयी।

तुमने शायद पढ़ा या सुना होगा कि कुछ वर्षों पूर्व कुछ नकाबपोशों ने रात में चलने वाली एक बस को रोककर यात्रियों का सामान लूट लिया था। यदि आज रात तुम्हें उसी मार्ग से यात्रा करनी हो, तो लूटपाट की कल्पना तुम्हारे मन को आतंकित कर देती है। तुमने पहले ही पिस्तौल लिए हुए नकाबपोशों द्वारा यात्रियों को धमकाए जाने का चित्र अखबार में देखा होगा। अब वे चित्र तुम्हारे मन में सजीव हो उठते हैं। यदि तुम्हारे पास रुपये-पैसे हैं, तो तुम उसे सुरक्षित रखने का सर्वोत्तम तरीका खोजने का प्रयास करते हो, रात भर जागते रहते हो। तुम्हारे दिल की धड़कन बढ़ जाती है। बीच-बीच में तुम स्वयं को आश्वस्त करने लगते हो कि यह सब भ्रम-मात्र है। परन्तु भय निरंतर तुम्हें पीड़ित करता रहता है। अन्तत: जब बस बीच में दुर्घटनाग्रस्त हुए बिना तुम्हें गन्तव्य स्थल तक पहँचा देती है, तब तुम राहत की साँस लेते हो।

इस प्रकार अनेक लोग निर्मूल काल्पनिक भयों से आक्रान्त रहा करते हैं।

सदमे द्वारा तबाही :

वह किसी भी प्रकार की शारीरिक दुर्बलताओं से रहित एक स्वस्थ युवक था। सामान्यतया वह हकलाता नहीं था, पर लोगों की भीड़ देखने पर वह एक शब्द भी नहीं बोल पाता था। लम्बे अर्से तक कोई भी उसकी इस अक्षमता का कारण नहीं समझ सका। अन्तत: विशेषज्ञों ने उसे सम्मोहन-विद्या की सहायता से सुलाकर उसकी हकलाहट का कारण जान लिया। तीन वर्ष की आयु में जब वह अपनी माँ के साथ सड़क पर जा रहा था, तो एक मोड़ पर उसने दो कारों के बीच हुई एक भयानक भिड़न्त देखी। उसकी आँखों के सामने ही कारों में आग लग गयी और लपटों के बीच कार में फँसे लोगों को बचाने हेतु लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। इस दुर्घटना के कारण उस संवेदनशील बालक के मन पर गहरा सदमा लगा और तब से वह जब भी लोगों की भीड़ देखता, उसकी वाक्यशक्ति चली जाती। विशेषज्ञों ने उसे सम्मोहन द्वारा सुलाकर उसके मन में गहराई से बैठे भय को दूर करने का प्रयास किया और इस प्रकार उसके भीतर पुन: आत्मविश्वास पैदा किया। विशेषज्ञ उसे फुटबाल-मैच तथा सर्कस आदि दिखाने ले गए, जिनमें उसे आनन्दपूर्ण दृश्य और अद्भुत करतब देखने को मिले। धीरे-धीरे वह भीड़ के साथ आनन्दपूर्ण खेलों का सम्बन्ध जोड़ना सीख गया। उसके अवचेतन मन ने इस नये साहचर्य को सत्य मान लिया और क्रमश: उसकी वाक्यशक्ति लौट आयी।

एक युवती हकलाहट से बड़ी परेशान थी। मनो-चिकित्सकों को इस रोग का मूल उसके अवचेतन मन में मिला। बचपन में वह प्राय: ही अपने माता-पिता के बीच झगड़े देखा करती थी। एक बार अपने पिता द्वारा माँ को पीटने का दृश्य देखकर उसे सदमा लग गया। यह सदमा उसके अन्तर्मन की गहराई में बैठ गया था। यह छिपा हुआ भय मनसे निकल जाने पर वह हकलाहट से मुक्त हो गयी।

हमें उक्त घटना का अभिप्राय समझना होगा। इसका निहितार्थ बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। इस घटना के आलोक में हम यह समझ सकते हैं कि हमारे देश में माता-पिता की अज्ञानता और परिवेश के प्रभाव से बच्चे कैसी कठोर परिस्थितियों तथा संकटों का सामना करते हैं। विभिन्न जातियों, धर्मों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं में जन्मे हमारे बच्चों का जीवन कैसा जटिल है। यद्यपि यह विषय इस भय के प्रकरण से सीधे तौर पर सम्बद्ध नहीं है, तो भी बच्चों के भावनात्मक जीवन और शिक्षा से इसका सम्बन्ध अवश्य है और इसके बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना यहाँ विषयान्तर नहीं है। एक बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, त्यों-त्यों वह अपने आसपास के परिवेश- घर, स्कूल तथा समुदाय के साथ उचित या अनुचित ढंग से सम्बद्ध होने लगता है। घर ही बच्चे को प्रभावित करने वाला सर्वप्रथम और सबसे शक्तिशाली स्थान है। यदि घर का परिवेश इसके परिवार के सदस्यों, विशेषकर माता-पिता के बीच आपसी विवादों और दोषारोपणों से दूषित है, तो इसका बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर गम्भीर असर

पड़ता है। हम कल्पना कर सकते हैं कि इससे बच्चे के व्यक्तित्व का विकास कितना बाधित होगा।

मान लो किसी बालक को घर, स्कूल तथा पास-पड़ोस से तिरस्कार और उपेक्षायुक्त व्यवहार मिलता है। फिर वह सहज भाव से कुसंग में पड़कर तरह-तरह के उत्पीड़न और प्रहारों का शिकार बनता है। इन भयावह अनुभवों की स्मृतियाँ उसके मन पर एक स्थायी दाग छोड़ जाती है। उसके मन में यह भावना घर कर जाती है कि वह सबके द्वारा अवांच्छित, परित्यक्त तथा उपेक्षित है। विभिन्न प्रकार के दुष्कर्मों में लिप्त होकर उसमें अपराध-बोध आ जाता है। उसे विश्वास हो जाता है कि वह कोई भी उपयोगी कार्य कर पाने में असमर्थ है। इस प्रकार एक व्यक्ति के रूप में उसका विकास प्रभावित होने लगता है। हीन-भावना से ग्रस्त होने के कारण वह दूसरों के समक्ष अपने मनोभाव प्रकट नहीं कर पाता। वह भावी दुर्भाग्यों से डरा रहता है; असहायता, निराशा, अपराध-बोध, क्रोध तथा बदले की भावना से परिपूर्ण रहता है। ऐसे युवक आगे चलकर सहज ही असामाजिक तत्त्वों में परिणत हो जाते हैं।

जटिल स्वभाव के माता-पिता :

कुछ माता-पिताओं की धारणा है कि धमकी या शारीरिक दण्ड देकर और कटु तथा कठोर भाषा का प्रयोग करके गलती करने वाले बच्चों को सुधारा जा सकता है। कुछ अन्य माता-पिता अपने बच्चों की उचित-अनुचित हर तरह की माँगों को पूरा करके उन्हें बिगाड़ डालते हैं। बहुत-से माता-पिता सोचते हैं कि एक बार विद्यालय में प्रवेश दिलाने के बाद उनका उत्तरदायित्व पूरा हो गया और वे बच्चों को उनके अपने भाग्य पर छोड़ देते हैं। कुछ माता-पिता अपने बच्चों के प्रति अप्रत्याशित व्यवहार करते हैं-कभी तो वे उन पर लाड़-प्यार की झड़ी लगा देते हैं और माँगते ही तत्काल पैसे दे देते हैं और दूसरे ही क्षण क्रोध के आवेश में उनकी किसी भी प्रकार की सहायता से इनकार करके बच्चों के लिये एक पहेली बन जाते हैं। कुछ अन्य माता-पिता अपने बच्चों की उनके अधिक बुद्धिमान और चतुर सहपाठियों के साथ तुलना करते हुए उनकी कमियों की हँसी उड़ाते हैं और इस प्रकार उनके मन को चोट और आत्मविश्वास को क्षति पहुँचाते हैं। बहुत-से लोग बच्चों के सामने ही उनके बड़ों, सम्माननीय माता-पिता तथा शिक्षकों को बुरा-भला सुनाते हुए उनकी कमियों की आलोचना करते हैं। कुछ अन्य लोग अपने बच्चों से असाधारण कर्तृत्व की अपेक्षा करते हैं और उनकी औसत उपलब्धि पर बुरी तरह निराश हो जाते हैं। माता-पिता के मन में उत्पन्न होने वाले अन्धविश्वास, सौतेली माँ का बुरा व्यवहार और निम्न जाति में पैदा होने की हीन-भावना, अहंकार, उद्धतता, राजनीतिक सघर्ष-ये सभी बच्चों के मनों पर विभिन्न प्रभाव डाल सकते हैं।

गाँधीजी ने कहा था, 'एक उत्तम घर के समान कोई विद्यालय नहीं, और चरित्रवान और सद्गुणी माता-पिता के समान कोई शिक्षक नहीं हो सकता। आधुनिक विद्यालयों की उच्च शिक्षा ग्रामीण बालकों पर एक भार है। ये बच्चे कभी इसका लाभ नहीं उठा पाएँगे और यदि उन्हें अच्छे परिवार की शिक्षा प्राप्त हो, तो वे इस स्कूली शिक्षा का अभाव भी महसूस नहीं करेंगे।'

हमारी यह इच्छा स्वाभाविक ही है कि हमारे विद्यालय ऐसे उत्तम परिवारों की कमी को कुछ हद तक पूरा करें। हमारी सरकार शिक्षा पर करोड़ों रुपये व्यय करती है। रूस की शिक्षा-संस्थाओं द्वारा बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर दिया गया महत्त्व प्रशंसनीय है। रूसी सरकार विघटित परिवारों से आए बच्चों की मानसिक समस्याओं के समाधान पर विशेष ध्यान देती है। इस निमित्त विद्यालयों में विशेष रूप से निर्मित कार्यक्रम चलाए जाते हैं। पर हमारे देश में रोजगार देने वालों का एकमात्र उद्देश्य पैसे कमाना या धन बटोरना है। इस तरह के परिवेश में भला कौन बच्चों की समस्याओं को समझने का प्रयास करेगा? और यदि कोई समझ भी ले तो उन्हें हल करने में मदद कौन करेगा? तब तक बच्चे आपात-विरोधी परम्पराओं तथा परिवेश का तनाव झेल चुके होंगे। उनकी मानसिक स्वास्थ्य-रक्षा के कार्य की शुरुआत प्राथमिक

स्कूल के स्तर से ही होनी चाहिए। समाज के पिछड़े वर्गों के बच्चों के कल्याण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। बाल-कल्याण में रुचि रखने वाले, शिक्षा पर विशेष ध्यान देने वाले, धैर्यवान, कर्तव्यपरायण और स्नेही शिक्षकों की इस कार्य में बड़ी आवश्यकता है। ऐसे शिक्षक हमें कहाँ मिलेंगे? यदि गुलाम शिक्षा देंगे, तो केवल गुलामों के झुण्ड ही पैदा होंगे।

नया क्षितिज :

क्या इस स्थिति में सुधार लाना सम्भव नहीं है? निश्चय ही सम्भव है।

सामान्यत: बाल्यकाल में सच्चे प्रेम से वंचित रहने वाला व्यक्ति मानसिक पीड़ा भोगता है। दीर्घकालीन धैर्य और प्रेम का निर्मल प्रवाह ही उसकी दशा में सुधार ला सकता है। तब उस व्यक्ति का जीवन आनन्द का स्रोत बन जाता है। उसके जीवन में एक नये युग की शुरुआत हो जाती है। पर प्रेम कोई बाजार में बिकने वाली चीज नहीं है। यह बहुमूल्य है, परन्तु, यह सर्वत्र विद्यमान है और हर किसी को इसकी जरूरत है। विशुद्ध प्रेम समस्त रोगों की अचूक दवा है। अगले अध्याय में हम आलोचना करेंगे कि किस प्रकार प्रेम की शक्ति से इस बीमार विश्व को सुखमय स्वर्ग में बदला जा सकता है।

मनश्चित्र :

हेराल्ड शर्मन कहते हैं, 'जीवन भर, इस बात पर बल देना आवश्यक है कि अपने मनश्चित्रों के पीछे की भावनाओं की तीव्रता की मात्रा के अनुरूप ही हमें अनुभव प्राप्त होते हैं।'

यदि आप निरंतर दुर्घटना के विचारों में ही डूबे रहते हैं, तो आपके जीवन में दुर्घटनाएँ प्रारम्भ हो सकती है। यदि आप साँपों से आतंकित हैं, तो आपका साँपों से सामना हो सकता है। यदि आप बीमारी से अत्यधिक भयभीत हैं, तो इससे कुछ रोगों को स्वयमेव निमंत्रण मिल सकता है। यदि आपको ऋणग्रस्त हो जाने का विचार सताता रहता है, तो सम्भव है कि आप ऐसी परिस्थिति में फँस जाएँ जो आपको ऋण लेने के लिए बाध्य करे। यदि आप भूत-प्रेतों तथा अलौकिक जीवों से भयभीत रहते हैं, तो आपको उनके बारम्बार दर्शन से परेशान होना पड़ सकता है। यदि आप अपमानित होने के भय से आशंकित रहते हैं, तो सम्भव है कि आपको अपमानित होना पड़ जाए। इन दुर्घटनाओं से बचने का सर्वोत्तम उपाय है कि ऐसे काल्पनिक भयों के चिन्तन से अपने आपको दूर रखा जाए।

साँप के आक्रमण से अपनी रक्षा के उपाय सोचना और सर्पदंश के भय से आतंकित रहना- दो अलग चीजें हैं। रोगों से बचने का उपाय करना और रोगों से आक्रान्त होने के भय का चिन्तन करना- दो अलग चीजें हैं। अपमान-जनक स्थिति से बचने का उपाय सोचना और सतत अपमान से आशंकित रहना- दो अलग चीजें हैं। भूत-प्रेतों के दुष्प्रभावों से मुक्त होना और उनके द्वारा सम्भावित हानि की कल्पना करना- दो अलग चीजें हैं। भयभीत रहना वस्तुत: भयकारी वस्तु से बचने का बिना कोई उपाय किए केवल उसके निरर्थक चिन्तन में लगे रहना है। अपनी रक्षा करने का अर्थ है, उससे बचने या उपचार करने के लिए सजग प्रयत्न करना। सजग भाव से हम जो कुछ करते हैं, वह हमें बुराइयों से बचाता है, और काल्पनिक भय हमें भयंकर कठिनाइयों में फँसा देते हैं।

निर्भय विजेता भय का ग्रास बना :

एक बार वैज्ञानिक प्रवृत्ति और तथाकथित निर्भय स्वभाव वाले एक युवक ने अपने मित्रों द्वारा प्रस्तावित एक चुनौती स्वीकार कर ली। उसे आधी रात के समय नगर के बाहर स्थित कब्रगाह में जाकर उसके बीचों-बीच एक खम्भा गाड़ना था। वह युवक रात में कब्रों की खोजबीन करके उनके भीतर भूत-प्रेतों की मौजूदगी का सत्यापन करने की महत्त्वाकांक्षा रखने वाले निर्भय विजेता के रूप में प्रसिद्ध था। वह विश्वास के साथ अग्रसर हुआ। उसके पीछे-पीछे जाने वाले मित्र कब्रिस्तान के द्वार पर रुककर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। वह युवक कब्रगाह में गया। मित्रों ने खम्भा गाड़ने की आवाज सुनी। और थोड़ी ही देर में सब कुछ शान्त हो गया। मित्रगण उस साहसी युवक

(शेष पृष्ठ 26 पर)

गतांक से आगे

यदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराजपालसिंह इनायती

आगे बढने से पहले एक नजर इस मणि पहाड़ और बयाना के इतिहास पर डालते हैं। बयाना के इतिहास के बारे में हमें अलग-अलग तथ्य मिलते हैं। बयाना का पहले श्रीप्रस्थ या श्रीपथ भी नाम आता है। एक मान्यता के अनुसार द्वापर युग में उल्लिखित गिरिव्रज नाम का स्थान यही था जहाँ का शासक जरासंघ था। एक दूसरी मान्यता के अनुसार यह बाणासुर की राजधानी थी जो बाद में अपभ्रंश होकर बयाना कहलाने लगी। यह वही बाणासुर था जिसकी पुत्री उषा अनिरुद्ध पर मोहित थी। यहाँ का उषा मंदिर उसी समय का साक्ष्य कहा जाता है। (इस संदर्भ में यह भी मान्यता है कि बाणासुर की नगरी शोणितपुर के नाम से विख्यात थी जो आज के आसाम राज्य में पड़ती है। ऐसे ही उत्तराखंड में भी वहाँ के स्थानीय निवासी बाणासुर की राजधानी उनके यहाँ मानते हैं, और वहाँ ऐसा एक मंदिर भी है जिसके बारे में मुझे वहाँ के स्थानीय निवासियों ने बताया था)। यह क्षेत्र गुप्त साम्राज्य के आधीन भी रहा और उस समय इस क्षेत्र को भंडानक क्षेत्र के रूप में जाना जाता था, जहाँ पर चौथी शताब्दी में समुद्रगुप्त के प्रतिनिधि ने अपनी विजय के उपलक्ष्य में विजयस्तम्भ (भीम लाट) बनवाया था जिस पर मालवा संवत् 428, (तदानुसार ईस्वी सन् 371) उत्कीर्ण है। बाद में यहाँ पर नवीं-दसवीं शताब्दी में प्रतिहार वंश का भी शासन रहा। इस सब से यह लगता है कि बयाना प्राचीन समय से ही आबाद था जिसे बाद में राजा विजय पाल ने विजय मंदिर गढ़ के नाम से अपनी राजधानी बनाया और वहाँ नए निर्माण कार्य करवाए।

विजयपाल रासो के अनुसार विजयपाल का राज्याभिषेक ईस्वी सन् 996 में बयाना के नवनिर्मित किले में हुआ और उनका राज्य मालवा, गुजरात उत्तरी भागों एवं राजपुताने के एक बड़े हिस्से तक रहा। रासो के अनुसार विजयपाल को 'महाराजा परम भट्टारक' की उपाधि से भी मंडित किया गया था। विजयपाल के 18 पुत्र थे जिनमें तिमनपाल सबसे बड़े थे। विजयपाल ने 51 वर्षों की दीर्घावधि तक शासन किया। संवत् 1103 (ईस्वी सन् 1046) में बयाना पर गजनी के शासक मसूद-इब्न मौदूद, (इसको स्थानीय इतिहासकारों ने गलती से शाह मसूद द्वितीय लिखा है) के सेनापति अबू बक्र कंधारी ने आक्रमण किया। कनावर के मैदान में राजा विजयपाल और अबू बक्र की सेनाओं का सामना हुआ। महाराजा विजयपाल के समय के दो भाई नल्ल और पल्ल वीर रस के कवि हुए हैं जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से उस युद्ध का वर्णन किया है, इस विजयपाल रासो काव्य के अनुसार ढाई पहर में अबू बक्र की सेना के पैर उखड़ गए लेकिन युद्ध में राजा विजयपाल के ग्यारह पुत्र भी काम आए। इस ग्रंथ में वर्णित घटनाक्रम के अनुसार कुछ चाकर इनाम की आशा में आक्रांताओं के हरे झंडे लेकर विजय की सूचना देने विजय मंदिर गढ़ की तरफ भागे। ऊपर किले से जब रानियों ने हरे झंडे लेकर बढते लोगों को देखा तो अनुमान लगाया कि राजा विजयपाल की हार हो गई है। अपने सतीत्व की रक्षा और आक्रांताओं की बदसलूकी से बचने के लिए पहले से तैयार विशाल चिता में जोहर कर लिया और जब राजा विजयपाल विजय मंदिर गढ़ किले में पहुँचे तो वहाँ पर सब कुछ खत्म पाया। इसी निराशा के भंवर में फंसकर राजा विजयपाल ने स्वयं अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। एक अन्य विवरण के अनुसार जब अबू बक्र कंधारी को किले के जौहर और राजा विजयपाल के पस्त होने के समाचार मिले तो उसने किले पर फिर आक्रमण किया और इस बार के युद्ध में विजयपाल वीर गति को प्राप्त हुए और बयाना पर अबू बक्र का अधिकार हो गया। इस प्रकार राजा विजयपाल के गौरवशाली राज्य का उत्थान और पतन हुआ। महाराजा विजयपाल के बड़े पुत्र तिमनलाल ने अगले 12 वर्ष वहीं

घने जंगलों में अज्ञातवास जैसे व्यतीत किए और बाद में एक संत के आशीर्वाद से तीमनगढ़ बसाया। उसके एक अन्य भाई गजपाल ने पश्चिम में पलायन किया और गीजगढ़ आबाद किया। मदनपाल के बारे में दो तरह के विवरण मिलते हैं, मुस्लिम इतिहासकार हबीबुल्लाह के अनुसार युद्ध से बचे हुए कुछ जादौन राजपूत मदनपाल के साथ अलवर के तिजारा क्षेत्र में पलायन कर गए और उनके वंशजों ने बाद में मुस्लिम धर्म अपना लिया जो खानजादों कहलाए। कालांतर में मेवात क्षेत्र से होने के कारण उनको मेव कहने लगे। इनमें से ही कुछ जिनको धर्म परिवर्तन स्वीकार नहीं था, वे लोग पूर्व में आज के बांदा और कौशांबी क्षेत्र की तरफ जाकर बस गए, जहाँ उनके वंशज आज भी मौजूद हैं। दूसरे विवरण के अनुसार मदनपाल ने चम्बल के किनारे पर जाकर मंडरायल के किले को आबाद किया। हबीबुल्लाह लिखता है कि कुछ जदुवंशी मध्य भारत में पलायन कर गए जिनके वंशज आज के अशोक नगर, विदिशा, गुना एवं होशंगाबाद आदि क्षेत्रों में चले गए जहाँ उन्हें बागड़ी जादों कहा गया।

मथुरा पर 1018 के आक्रमण के समय जयेन्द्र पाल का एक अन्य पुत्र कुलचंद्र सत्ता में था, उसने गोरी के आक्रमण का बहुत बहादुरी से सामना किया लेकिन अपने हजारों आदमियों के रण खेतों में काम आने के बाद और अनेक के प्राण बचाने हेतु यमुना में कूद कर जान बचाने के प्रयास में मारे जाने से व्यथित होकर स्वयं परिवार सहित मौत को गले लगा लिया। (यह जानना भी रुचिकर होगा कि इस काल में जहाँ कुलचंद्र ने बहादुरी से गोरी का सामना किया और जब आसन्न पराजय दिखने लगी तब स्वयं अपने हाथों अपने परिवार सहित मौत को गले लगा लिया वहीं बुलंदशहर में भी इस काल में जदुवंशी राजा हरदत्त राज करता था जिसने कुलचंद्र की हार से डर कर गोरी के आक्रमण के समय मुस्लिम धर्म अपना कर जान बचाई।)

गोरी ने कुलचंद्र की मौत के बाद मथुरा शहर में प्रवेश किया और वहाँ की शानो शौकत देखकर उसकी आँखें फटी की फटी रह गई। उसने मथुरा के मंदिरों को लूटने और विध्वंश करने का आदेश दे दिया। महमूद गजनवी के साथ आए इतिहासकार अल बरूनीं और अल उत्बी आदि ने तारीख ए यामीनी और फरिश्ता आदि अपनी-अपनी तवारीखों में लिखा है कि मथुरा को सुल्तान ने 20 दिनों से अधिक तक लूटा, मंदिरों से अनगिनत सोने चाँदी की मूर्तियाँ और जेवरात मिले, अन्य घरों से भी अकूत धन संपत्ति उसके हाथ लगी जिसे सैकड़ों ऊंटों के ऊपर लाद कर वह अपनी राजधानी ले गया। तारीख ए यामीनी के अनुसार उसे कुछ मूर्तियाँ सोने की भी मिली जिनमें सबसे भारी मूर्ति 12 सेर से भी भारी ठोस सोने की बनी हुई थी। इस मूर्ति में डेढ़ सेर वजन का तो नीलम ही लगा हुआ था तथा आँखों की जगह बड़े-बड़े माणक जड़े हुए थे। इन सब सोने चाँदी की मूर्तियों को तोड़कर गलाया गया और सिल्लियों के रूप में सारा धन वह अपने साथ ले गया। इसके अलावा वह हजारों की संख्या में अपने साथ हजारों जवान आदमियों, औरतों को गुलाम बना कर ले गया। हजारों औरतों ने दुराचार और अत्याचार से बचने के लिए यमुना में कूद कर जान दे दी। इस प्रकार हूणों के आक्रमण के बाद से फिर प्राप्त वैभव को गोरी ने ना केवल लूटा बल्कि ऐसा लूटा की फिर से यह कभी अपना वैभव प्राप्त ही नहीं कर पाया।

(क्रमशः)

संसार में सबसे बड़ा दिवालिया वह है, जिसने अपना उत्साह खो दिया हो। चाहे उसका सब कुछ क्यों न चला गया हो, यदि उसने अपना उत्साह बचा लिया है, तो वह मुसीबतों से निकल कर फिर सफलता प्राप्त कर लेगा।

– एच. डब्लू, अरनाल्ड

सनातन धर्म

– ब्रिगेडियर मोहनलाल (से.नि.)

परिचय :

1. सनातन धर्म अर्थात् अनन्तकालीय या नित्य धर्म जो वेदों व देवार्पित ग्रन्थों पर आधारित है। भारत के उत्तरी भाग में आर्य आकर बसे, जिसे आर्यावर्त कहा गया। इन्हीं आर्यों को इस धर्म की प्राप्ति हुई, अत: इसे आर्य धर्म और बाद में हिन्दू धर्म कहा गया। इस पृथ्वी पर हिन्दू धर्म सबसे पुराना धर्म है। हिन्दू धर्म में अनगिनत विश्वविख्यात ऋषि-मुनि व महान पुरुषों की उत्पत्ति हुई जिन्होंने हिन्दू धर्म को गौरवशाली बनाया।

सनातन धर्म की बुनियाद :

2. सनातनधर्म की ठोस बुनियाद 'श्रुतिः' है, याने जो सुना गया और धर्म की दीवारें 'स्मृति' हैं, याने वह जो याद रहा। श्रुति हमें उन ज्ञानी पुरुषों से प्राप्त हुआ, जिन्होंने वह ज्ञान देवों से प्राप्त किया और बार-बार दोहरा करके याद किया। इन्हीं ज्ञानियों ने यह देवार्पित ज्ञान कविता के रूप में बार-बार दोहरा कर अपने शिष्यों को याद करवाया और यह शृंखला चलती रही। वर्तमान समय में भी वैदिक पाठशालाओं में शिष्यों को श्रुति का ज्ञान इसी तरह दिया जाता है।

3. **श्रुति के चतुर्वेद :** ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। प्रत्येक वेद तीन भागों में विभक्त है :

(1) **मंत्र :** मंत्र भगवान की वंदना के रूप में है, जिन्हें धार्मिक अनुष्ठानों में लय के साथ गाया जाता है। इससे जो ऊर्जा उत्पन्न होती है वह अनुष्ठान को सफल बनाती है।

(2) **ब्राह्मणम् :** ब्राह्मणम् वेदों का वह हिस्सा है जिसमें अनुष्ठान को पूर्ण करने की पद्धति दी गई है।

(3) **उपनिषद् :** उपनिषद् में गहरा तत्वज्ञान अर्जित है जो हमें दर्शाता है कि-ब्रह्म ही परमात्मा है, हमारी आत्मा भी उसी परमात्मा का हिस्सा है, यह पूरा संसार आपस में सम्बन्धित है, याने वसुधैव कुटुम्बकम् है। अत: श्रुति शास्त्र सनातन धर्म का सर्वमान्य ग्रन्थ है और सभी सनातन धर्मियों को स्वीकृत है।

4. **स्मृति याने धर्मशास्त्र :** स्मृति को ऋषियों ने श्रुति के आधार पर चार शास्त्रों के रूप में लिखा है। इन शास्त्रों में हिन्दू परिवार, समाज व देश को परिचालित करने के अधिनियम, व्यवस्था और संपूर्ण विधि-विधान लिखे हैं। स्मृति के चार शास्त्र इस प्रकार हैं :-

(1) मनुस्मृति या मानव धर्मशास्त्र,
(2) याज्ञवल्क्य स्मृति,
(3) शंख लिखित स्मृति और
(4) पराशर स्मृति।

5. मनु, श्वम्भू के वंशज थे। मनुस्मृति द्वारा मनु ने आर्यों के मानव धर्म शास्त्र का पूरा सारांश प्रदान किया। याज्ञवल्क्य स्मृति भी मनुस्मृति की तरह ही लिखी गई है और मनुस्मृति के बाद इसी की महत्त्वता है। शंखलिखित स्मृति और पराशर स्मृति का अध्यापन व उल्लेख कम ही किया जाता है।

6. श्रुति और स्मृति सनातन धर्म की नींव और दीवारें हैं। इनके अतिरिक्त सनातन धर्म के दो प्रमुख समर्थक शास्त्र हैं :-

(1) पुराण (अठारह) और (2) इतिहास।

7. पुराण में कहानियाँ व कथाएँ व इतिहास हैं, जो वेदों का अध्यापन नहीं कर पाये उनके लिए पुराण उपयोगी हैं। इतिहास में दो मुख्य ग्रन्थ हैं :-

1. **रामायण :** रामायण से हम सब परिचित हैं। यह राजा दशरथ, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, सीता, राम के भाइयों आदि का इतिहास है। त्रेता युग में रावण और उसके अधर्म को नष्ट करके राम ने धर्म की स्थापना की। विष्णु के सातवें अवतार 'राम ब्रह्म परमेश्वर रूपा' जिनके भजने से कष्टों का निवारण होता है। तुलसी मेरे राम को रीझ भजे या खीझ, भोम पड्यो ऊगे सदा उल्टा-सीधा बीज।

2. **महाभारत :** महाभारत कौरवों और पांडवों के बीच महायुद्ध का इतिहास है। द्वापर युग में जब कौरवों का अत्याचार और उनके द्वारा किया गया अधर्म चरम सीमा पर पहुँच गया, तब भगवान विष्णु ने श्रीकृष्ण के रूप में आठवाँ

अवतार लेकर कुरुक्षेत्र के पावन स्थल पर अधर्म का अन्त करके धर्म की स्थापना की। मुनिवर व्यास ने अठारह पुराण, नौ व्याकरण और चार वेदों का मन्थन करके महाभारत की रचना की। तत्पश्चात् महाभारत का मन्थन करके उन्होंने श्रीमद्भवद्गीता की रचना की। धर्म-स्थापना के बारे में श्रीकृष्ण कहते हैं :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

8. रामायण और महाभारत सनातन धर्म के वे पवित्र इतिहास हैं, जो प्राचीन भारत, उनके लोग, रिवाज, प्रथा, कला, कौशल आदि के बारे में बताते हैं। इनको पढ़ने से ज्ञात होता है कि भारत कितना महान था और इनको पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि हमें दुबारा कैसा चरित्र और व्यवहार हासिल करना चाहिए कि हम फिर महान् बनें।

सनातन धर्म का विज्ञान और दर्शनशास्त्र :

9. श्रुति, स्मृति, पुराणों और इतिहास ने सनातन धर्मरूपी भवन का निर्माण किया। शानदार साहित्य, विज्ञान और दर्शनशास्त्र ने इस दैविक धर्म में चार चाँद लगा दिये।

10. प्राचीनकाल में धर्म का साहित्य और विज्ञान सम्मिलित थे और उन्हें धर्म निरपेक्ष ज्ञान कहा गया, जिसके षडंगानि याने छः अंग थे :-

1. व्याकरण (नौ), 2. भाषाशास्त्र, 3. ज्योतिष विज्ञान, 4. काव्य कला, 5. चौंसठ विज्ञान और कला-कौशल और 6. अध्ययन के तरीके।

11. दर्शनशास्त्र के भी छः विभाग थे (षड्दर्शनानि), जिन्हें छः पद्धतियाँ भी कह सकते हैं। इन सबका एक ही उद्देश्य था कि भटके हुए मानव को परमात्मा से सदा जोड़े रखना। इसका सिर्फ एक रास्ता है-ज्ञान हासिल करना। हालांकि ज्ञान हासिल करने का तरीका मानव के मानसिक विकास पर निर्भर करता है। परन्तु उद्देश्य एक ही है-मानव को परमात्मा से जोड़ना।

12. दर्शनशास्त्र के छः विभाग इस प्रकार हैं :

1. न्याय एवं वैशेषिक दर्शन : न्याय याने सत्य जिसके खोजने के चार रास्ते हैं। पहला रास्ता है-अपनी इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष प्रमाण देखकर सत्य को तय करे। दूसरा रास्ता है-अनुमान द्वारा, तीसरा तरीका है-उपमा याने तुलनात्मक तरीके से और चौथा रास्ता है-शब्द प्रमाण याने अधिकृत लोग, जो सत्य को जानते हैं, उनकी वाणी ही स्वीकृत है, क्योंकि वह सत्य तो हमें दिखाई ही नहीं देता। इस तरह न्याय को प्रमाणों द्वारा तय किया। इस तरह पंचतत्त्व, जो हमें दिखाई देते हैं, उनकी सच्चाई का ज्ञान प्राप्त हो गया। इसके अलावा वैशेषिक अर्थात् मन, आत्मा, समय, अभाव प्रमाण आदि लेकर संसार का विश्लेषण किया गया और सर्वोच्च उपयोगी ज्ञान याने परमात्मा के ज्ञान की सत्यता की खोज हुई। ईश्वर एक है, वह कण-कण में है और हमारी आत्मा ही परमात्मा है।

2. सांख्य ज्ञान मानव के स्वभाव, आत्मा, प्रकृति व भौतिक पदार्थों व उनके आपसी सम्बन्ध में बारे में व्याख्या करता है।

3. योग शास्त्र मानव के पाँच इन्द्रियों, पाँच कार्यशील अंगों, सूक्ष्म अंगों व चेतना के बारे में ज्ञान प्रदान करता है और भगवत्-प्राप्ति के लिए उनको कैसे विकसित किया जाये, ताकि हम अन्तरात्मा को पहचान सकें।

4. मीमान्सा दर्शन हमें धार्मिक और सांसारिक कर्मों के यज्ञ के बारे में बतलाता है। कर्मों के कारण, उनके परिणाम या फलों से मानव को इस लोक और परलोक में कैसे बाँधते हैं।

5. वेदान्ता हमें बताता है कि यथार्थ में परमात्मा (आत्मा) क्या है? और मानव का जीवन भी यथार्थ में वही आत्मा है। आगे हमें यह दिशा-निर्देश देता है कि मानव को इस संसार में कैसे जीना चाहिए, ताकि कर्म उसे नहीं बाँध सके।

6. अन्त में यह बताता है कि परमात्मा की मायाशक्ति क्या है? और इस संसार की कैसे उत्पत्ति होती है और कैसे प्रलय होती है। अन्त में हमें यह ज्ञान उपलब्ध होता है कि हमारी आत्मा, परमात्मा में विलय होकर कैसे मोक्ष की प्राप्ति करती है।

13. महान् सनातन धर्म का संक्षिप्त परिचय अध्ययन के लिये प्रस्तुत किया है। हिन्दू धर्म की बुनियाद आगे फिर प्रस्तुत की जायेगी। ❒

इतिहास के झरोखे में गोगा चौहान

– मातुसिंह मानपुरा

करसि उणरी हुसी सही, आसी बिन न्यूतीह।
आ नह किण रै बापरी, भगती रजपूतीह।।

उपर्युक्त दोहा भक्ति और रजपूती के सामंजस्य स्वरूप को प्रस्तुत करता है। भक्ति रजपूती कार्य है और रजपूती भक्ति का एक प्रकार है। इसलिए भक्ति और रजपूती के आधार को अलग किया जाना सम्भव नहीं है, अर्थात् जो भक्त है वो रजपूत है और जो रजपूत है वो भक्त है। इस शाश्वत भारतीय दर्शन को मूर्तरूप देने के लिये अनेक योद्धाओं ने मरुभूमि में जन्म लिया है, जिसमें से इतिहास के पृष्ठों एवं लोककथाओं में एक देदीप्यमान नक्षत्र का नाम है-गोगदेव चौहान।

मरुभूमि में चौहान प्रभुसत्ता का प्रारम्भिक काल :– चौहानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक तर्क इतिहास के पृष्ठों में सुशोभित हैं। क्षात्रधर्म का पालन करने वाले इस वंश की 24 शाखाओं तथा अनेक उपशाखाओं के अस्तित्व को सभी इतिहासकारों ने निर्विवाद स्वीकार किया है। शाखाओं का नामांकरण महापुरुषों के नामों के अतिरिक्त स्थान के नाम के साथ जोड़कर भी किया गया, यथा-सपादलक्ष, भड़ोंच, रणथम्भौर, नाडोल, सांचोर, जालोर, आबू, कोटा, बूंदी और बजरंगगढ की चौहान शाखाएँ इतिहास प्रसिद्ध रही हैं। चौहान वंश मरुभूमि में प्रतिष्ठित इन शाखाओं में से सपादलक्षीय चौहान शाखा ने श्रेष्ठता प्राप्त कर अपने आपको संघर्ष में अग्रणी रखा तथा इसी शाखा में अनेक युद्धों के विजेता, अन्तिम हिन्दू सम्राट के नाम से लोकप्रिय पृथ्वीराज चौहान तृतीय ने भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था।

'चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास' के लेखक श्री गोविन्द अग्रवाल के शोधपूर्ण तथ्यों के अनुसार वासुदेव सपादलक्षीय शाखा का पहला शासक था जिसका कार्यकाल वि.सं. 608 के लगभग रहा तथा सांभर के निकट किसी सुरक्षित स्थान पर राजधानी रही। इतिहासकार ओझा के अनुसार वासुदेव के वंशजों की राजधानी अहिच्छत्रपुर (नागौर) थी जिसका समय वि.सं. 725 के लगभग प्रमाणित माना गया है। तत्कालीन समय में इन शासकों को सपादलक्षीय नृपति के नामसे जाना जाता था। कालान्तर में इस वंश के कुशल योद्धाओं ने अलग-अलग नेतृत्व में मरुप्रदेश के विस्तृत भू-भाग पर अधिकार कर लिया था। चूरू से लेकर अजमेर व आसपास क्षेत्र के शोधकर्ता एवं 'लाडनू : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण' के लेखक श्री भंवरलाल जांगिड़ ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'अनेक व्यवधानों के बावजूद भी राजपूताने में चौहान वंश बहुत फला-फूला। सब को राज मिलना सम्भव नहीं बन पड़ा, और अधिक जमीन की आवश्यकता हुई। चौहानों की एक दूसरी शाखा जमीन की तलाश में उत्तर-पूर्व की ओर आमुख हुई। नागौर से लाडनू, द्रोणपुर, छापर होते हुए उत्तर में नोहर-भादरा तक पहुँच गई।' इन सभी तथ्यों के आधार पर यह प्रमाणित है कि घांघू (चूरू) क्षेत्र पर अधिकार करने से पूर्व सांभर व नागौर क्षेत्र में चौहानों ने अपने सुदृढ़ राज्य कायम कर रखे थे।

वर्तमान चूरू क्षेत्र (घांघू) में प्रवेश :– ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह प्रमाणित है कि चूरू क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व 10वीं शताब्दी के लगभग प्रारम्भ में नागौर-लाडनू क्षेत्र में दूर-दूर तक प्रभाव कायम हो गया था। इसी समय सांभर (सपादलक्षीय) शाखा के एक ऊर्जावान वंशज घंघरान ने वर्तमान चूरू से 12 कि.मी. पूर्व में घांघू नगर की स्थापना कर आसपास के विस्तृत क्षेत्र पर विक्रम की 10वीं शताब्दी के लगभग मध्य में अधिकार कर लिया था। ऐतिहासिक तथ्यों के लिए प्रमाणित 'क्यामखां रासा' के रचनाकार कवि जान ने इस घटना के सम्बन्ध में लिखा है –

घंघरान ताकै भयौ, कीनौ घांघू गाँव।
अपनी भुज बरजात मै, नीकौ कीनौ नांव।।

राणा घंघरान की प्रथम रानी से दो पुत्र हर्ष और हरकरण तथा एक पुत्री जीण हुये। ज्ञातव्य है कि अपनी तपस्या के कारण हर्ष 'भैरूं' एवं जीण 'माता' के नाम से लोकदेवता के रूप में सुविख्यात हैं। राणा घंघरान की दूसरी राणी से कन्हराज, चंदराज और इंदराज (कन्ह, चंद, इंद) तीन पुत्र हुये। 'क्यामखां रासा' के कवि ने लिखा है, 'तीन जने सुत अप्छरा, कन्ह, चन्द पुनि इंद' तो सही है लेकिन इतिहासकारों द्वारा इसे हुबहू इतिहास का तथ्य बना लेना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि काव्य और इतिहास में अन्तर होता है। काव्य रचना इतिहास हो आवश्यक नहीं लेकिन इतिहास के कथानक से काव्य रचना की जा सकती है। काव्य और इतिहास की सामंजस्यता से सम्बन्धित भूलें इतिहासकारों ने कई घटनाओं के तथ्य निर्धारण में की हैं। जायसी की 'पद्मावत' एवं कन्हैयालाल सेठिया की 'पातल और पीथल' काव्य रचनाओं के रचनाकारों ने इसे ऐतिहासिक तथ्य होने से स्पष्ट मना किया था लेकिन दुर्भाग्य है कि कालान्तर में इसे इतिहास का तथ्य माना जाने लगा। चूरू मण्डल के शोधपूर्ण इतिहासकार ने भी इस त्रुटि को दोहराया है। दोहा शैली में लिखित 'क्यामखां रासा' की पंक्तियों को आधार मानकर, घंघरान का लोहार्गल में शिकार खेलने जाना, तालाब पर अप्सराओं का आना, राणा द्वारा कपड़े छुपाना, एक अप्सरा द्वारा राणा से विवाह करने की स्वीकृति देना, आदि तथ्य इतिहास के अंग नहीं कहे जा सकते क्योंकि ऐसी काल्पनिक घटनाओं को लोककथाओं में कई बार दोहराया गया है। इन पंक्तियों का मूल तथ्य तो यह लगता है कि 'साधारण परिवार की क्षत्रिय बालिका से राणा घंघरान ने विवाह किया जो अप्सरा के समान सुन्दर थी, रानी को प्रतिष्ठित करने के लिये इस लोकतथ्य का सृजन हुआ है।'

राणा घंघरान की मृत्यु के बाद दूसरी रानी का बड़ा पुत्र कन्हराज (कन्ह) पिता का उत्तराधिकारी हुआ। चंदराज एवं इंदराज ने अपने अलग राज्य कायम किये। घांघू राणा कन्हराज के चार पुत्र हुये-अमरा (अमरपाल), अजरा (अजेराज), सिधरा (सिधराज), बछरा (बछराज)। कन्हराज के बाद घांघू का राणा अमरपाल हुआ। राणा अमरा के समय घांघू राज्य ने सुदृढ़ता प्राप्त की तथा राज्य क्षेत्र का विस्तार भी हुआ। कन्हराज के अन्य पुत्र अजरा, सिधरा व बछरा ने अपनी राजनैतिक एवं सामाजिक पहचान घांघू से अलग कायम की।

'क्यामखां रासा' के दोहा 108 के अनुसार -

अजराते चाहिल भयो, सिधरा ओर जहांन।
बछराते मोहिल भये, अमराते चहुवान।।

यह दोहा हमें पुन: समीक्षा करने का संकेत दे रहा है। इसका अर्थ है-अजरा से चाहिलों की शाखा चली, सिधरा से अन्य (अज्ञात), बछरा से मोहिलों की शाखा चली और अमरा से चौहानों की शाखा आगे बढी। अजरा और अमरा के वंशज अलग-अलग होते हुए भी स्नेहभाव था इसलिए अमरा एवं अजरा के वंशजों को लोग भ्रमवश चाहिल ही मानते हैं लेकिन यह अलग-अलग हैं और तथ्य में शोध की आवश्यकता भी है। बछरा से मोहिलों की कौनसी शाखा चली और कैसे? क्योंकि मोहिलों की शाखा घंघरान के तीसरे पुत्र इंद के प्रपौत्र मोहिल से चली थी जिसका विवरण आगे के पृष्ठों में मुहता नैणसीं एवं चांपसी सामौर के प्रमाणित तथ्यों के आधार पर लिखा गया है।

ददरेवा :- राणा अमरा (अमरपाल) के समय घांघू के चौहानों ने उत्तर-पूर्व की तरफ राज्य विस्तार का विचार किया। अमरा एवं जेवर (अमरा का पुत्र जीवराज) के नेतृत्व में ददरेवा क्षेत्र पर अधिकार कर लिया गया। ददरेवा (तारानगर जिला चूरू से 19 कि.मी. पूर्व में स्थित) सम्भवत: उस समय रीणी (तारानगर) के डाहलियों के अधिकार में था लेकिन घांघू के चौहानों की बढ़ती हुयी शक्ति के आगे डाहलियों ने ददरेवा को पुन: प्राप्त करने हेतु प्रयास नहीं किया। अमरपाल ने जीवराज (जेवर) को नया राज्य स्थापित कर घांघू राज्य से अलग कर दिया। इतिहास के पाठक जानते हैं कि कई दूरदर्शी शासकों ने अपने राज्य विस्तार अथवा मनचाहा उत्तराधिकारी बनाने

हेतु ऐसा प्रयास कई बार किया है। ददरेवा राणा जीवराज (जेवर) योग्य शासक था। उसने अपने राज्य का विस्तार उत्तर-पूर्व दिशा में किया क्योंकि दक्षिण एवं पश्चिम में टकराव लेना अहितकर था। 'चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास' के पृष्ठ 52 पर लिखा है-'अमरा के बाद उसका पुत्र जेवर राणा बना। सम्भवत: अमरा या जेवर ने घांघू की बजाए ददरेवा (घांघू से 24 मील उत्तर-पूर्व) को अपना मुख्य केन्द्र (राजधानी) बनाया। जेवर के बाद उसके सुप्रसिद्ध पुत्र गोगाजी ददरेवा के अधीश्वर बने।' डॉ. तेसीतोरी ने अपने शोधकार्य में एक हस्तलिखित ग्रंथ की पंक्ति का उल्लेख किया है, 'चवांण जेवर तिण रो रांणा खेताब थो गढ ददरेवै राजधानी थी।' ज्ञातव्य है कि अमरपाल घांघू का राणा था। लोककथाओं या किसी भी इतिहासकार ने ददरेवा राणा के रूप में अमरपाल का नाम नहीं बताया है। ददरेवा में लगभग 550 वर्षों तक सत्तारूढ इस वंश का जेवर (जीवराज) पहला राणा था तथा उसके बाद गोगा चौहान ददरेवा का राणा बना।

गोगा का जन्म तथा गोरखनाथ का सांसारिक समय :- गोगा चौहान के सम्बन्ध में जानकारी के लिये प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है लेकिन इसमें भ्रमित करने वाले तथ्य अधिक हैं। लोककथाओं में गोगा का जन्म गुरु गोरखनाथ के आशीर्वाद से बताया जाता है। इस तथ्य को स्वीकार या अस्वीकार करने का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। गोगा के जन्म समय के सम्बन्ध में हम ऐतिहासिक घटनाओं को आधार मान सकते हैं। राणा घंघरान द्वारा घांघू में राज्य स्थापित करने का समय, कन्हपाल और अमरपाल का क्रमश: घांघू की गद्दी पर बैठना, अमरपाल के सहयोग से जेवर (जीवराज) का ददरेवा में राज्य स्थापित करना, अर्जन के पौत्र सर्जन के पुत्र मोहिल का राज्यकाल तथा गोरखनाथ के सांसारिक जीवन का समय, के आधार पर लिखा जा सकता है कि जेवर के पुत्र गोगा का जन्म वि.सं. 1037 (ई.सं. 980) के लगभग होना प्रमाणित होता है।

सिद्ध संत गोरखनाथ के सांसारिक जीवन के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारिक एवं धार्मिक आख्यान सुनने को मिलते हैं तथा कहा जाता है कि इनका सांसारिक जीवन 150 वर्ष से अधिक का रहा है। इतिहास एवं लोककथाओं के तथ्य गुरु गोरखनाथ एवं गोगा चौहान को समकालीन प्रमाणित करते हैं। 'गोगाजी चौहान री राजस्थानी गाथा' के लेखक श्री चन्द्रदान चारण ने लिखा है, 'गोरखनाथ का निश्चित समय अभी ज्ञात नहीं किया जा सका है, श्री परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार इनके जीवनकाल के लिए ईसा की 10वीं शताब्दी अथवा अधिक से अधिक 11वीं के प्रारम्भिक भाग में अर्थात् विक्रम की 11वीं शताब्दी में ही कोई समय निश्चित करना उचित कहा जा सकता है।' डॉ. पीताम्बरदास बड़थ्वाल की 'गोरखवानी' को आधार मानकर श्री चन्द्रदान चारण ने लिखा है कि 'एक विद्वान ने गोरखनाथ का विक्रमी की ग्यारहवीं सदी में होना माना है।'

विवाह एवं संतति :- गोगा चौहान के विवाह से सम्बन्धित तथ्य लोककथाओं के आवरण से ढके हुये हैं, जनभावना के अनुसार आकर्षक तो हैं लेकिन सत्यता से हटकर हैं। विवाह सम्बन्धी सही तथ्यों को प्राप्त करने के लिये इतिहासकारों द्वारा अल्प परिश्रम किया गया लगता है क्योंकि अधिकतर ने लोककथाओं को हुबहू स्वीकार कर लिया है। लोककथाओं में गोगा के दो विवाह होने की कथा है। एक रानी का नाम सुरियल था जो गोगा के ननिहाल (वर्तमान सहारनपुर) क्षेत्र में किसी प्रतिष्ठित राजवंश की राजकुमारी थी। यह सत्य लगता है लेकिन वंश व नाम की जानकारी देना लोककथाओं को समर्थन देना होगा। सम्भवत: यह गोगा का पहला विवाह था जिसमें ननिहाल पक्ष की भावना के साथ मोसेरे भाई सर्जन के पिता अर्जन की सहमति भी थी क्योंकि राणा जेवर के समय अर्जन एवं उसकी रानी आछल तथा पुत्र सर्जन का ददरेवा में अधिक आना-जाना था। आछल (सर्जन की माँ), बाछल (गोगा की माँ) क्रमश: बड़ी-छोटी बहिन थी। सम्भवत: अधिक सम्पर्क का कारण सहारनपुर जाने का सुगम व सुरक्षित मार्ग ददरेवा होकर जाता था। विश्वस्त जानकारी के अनुसार सहारनपुर के पास खरसावा गाँव में गोगा की माँ बाछल का

मन्दिर भी है। इतिहास एवं लोककथाओं में दूसरी रानी का नाम केलमदे था जिसे पाबुजी के भाई बुड़ोजी की पुत्री बताया जाता है। यह सत्य नहीं है, केलमदे की पहचान कराने के लिए अनुयायियों द्वारा पाबुजी के नाम के साथ जोड़कर किया गया प्रयास था, जिसने लोकरंजन तो किया लेकिन मूल तथ्य से दूरी बढा दी। तीन शताब्दी के अन्तर को लोककथाओं ने नहीं समझा। आध्यात्मिक भावना से समर्पित कथाकारों को यह ज्ञात नहीं था कि बुड़ोजी-पाबुजी के पूर्वज राव सीहा का मरुभूमि में प्रवेश वि.सं. 1300 के लगभग हुआ था, तो फिर गोगाजी के समय (11वीं सदी के मध्य) केलमदे का नाम बुड़ोजी की पुत्री के रूप में कैसे आया? लोककथाओं के मूल में कहीं न कहीं आंशिक सत्यता भी होती है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। नि:संदेह केलमदे राठौड़ राजकुमारी थी लेकिन इसके सम्बन्ध में जानकारी का अभाव था।

मरुप्रदेश (राजस्थान) में भारत के पूर्वी क्षेत्र से राठौड़ों की एक शाखा का आगमन सम्भवत: विक्रम की 10वीं शताब्दी में हो गया था। 'गोगाजी चौहान री राजस्थानी गाथा' के लेखक ने इतिहासकार विश्वेश्वरनाथ रेऊ की पुस्तक 'राष्ट्रकूटों का इतिहास' के पृ.सं. 118 के आधार पर अपनी पुस्तक में लिखा है, 'राजस्थान में राष्ट्रकूटों की सबसे प्राचीन शाखा का समय वि.सं. 950 के आसपास से वि.सं. 1053 के आसपास तक माना गया है' चूरू जिले के रतनगढ़ शहर से 6 कि.मी. उत्तर-पश्चिम में 'हुडेरा जोगियान' इस क्षेत्र के आबाद प्राचीन गाँवों में से है, यहाँ पर नाथ सम्प्रदाय का एक मठ है जिसमें 'देवलनाथ' की समाधि है। इसी समाधि के पास राठौड़ नरहरिदास की देवळी है, इस पर एक घुड़सवार योद्धा का हाथ में तलवार लिये चित्र है एवं घोड़े के आगे एक सती हाथ जोड़े खड़ी है तथा चार पंक्तियों का एक लेख भी उकेरित किया हुआ है। इस पर बैसाख सुदि एकम वि.सं. 1309 लिखा हुआ है। इसे देखकर यह सम्भावना लगती है कि यह स्थान प्रारम्भ में इस देवळी के कारण पूज्य था। छाया-पानी की व्यवस्था देखकर देवलनाथ जी यहाँ ठहरे एवं कालान्तर में समाधि ले ली। वर्तमान में देवळी एवं समाधि की नियमित पूजा होती है। यहाँ पर दो देवळी और भी हैं जो इसी मठ में दीवार के पास रखी है, उन पर सफेद रंग कर रखा है, एक देवळी में तीन सती घोड़े के आगे खड़ी हैं तथा एक में एक ही सती खड़ी है। यह पूजा स्थान पर नहीं रखी हैं एवं नरहरिदास की देवळी से प्राचीन प्रतीत होती हैं। गाँव में जोगी परिवारों की संख्या अन्य की अपेक्षा अधिक है। इन जोगियों ने पूछने पर बताया कि हम चौहान हैं, हमारे पूर्वज ददरेवा से बिना बताए आकर इस क्षेत्र में रहने लगे।

यह ऐतिहासिक स्थान हमें कई तथ्य उपलब्ध करवाता है। एक तो यह सिद्ध करता है कि यह स्थान कई बार युद्ध का मैदान रहा है क्योंकि तीनों देवळियाँ दो या तीन युद्धों की साक्षी हैं। तीन रानी जिसके साथ सती हुयी हैं वह शासक है, युद्ध मैदान में काम आया लेकिन राज्य नहीं गया। एक सती वाली देवळी भी शासक की ही है क्योंकि इसकी कोरनी (उकेरन) अलग कारीगर द्वारा की हुई लगती है। कोलासर (रतनगढ़) के तत्कालीन शासकों पर आक्रमण पश्चिम क्षेत्र से अधिक हुये इसलिए इन्हें राजधानी तक पहुँचने से पूर्व रोकने का प्रयास इस युद्ध मैदान में ही किया जाता रहा है। यहाँ के निवासियों द्वारा चौहान बताना या ददरेवा से आना सत्य नहीं है लेकिन यह सत्य है कि ददरेवा से इनका कोई पूर्व में अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष सम्पर्क अवश्य रहा है। तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं युद्ध मैदान के साक्ष्य इस बात के प्रमाण हैं कि राठौड़ नरहरिदास इस वंश का सम्भवत: अन्तिम शासक था। राष्ट्रकूटों का इतिहास, गोगाजी री राजस्थानी गाथा एवं उपलब्ध देवळियों से यह प्रमाणित होता है कि विक्रम की 10वीं शताब्दी के मध्य से लेकर विक्रम की 14वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक रतनगढ़-डूंगरगढ़ जिला चूरू-बीकानेर विस्तृत क्षेत्र में राठौड़ राज्य प्रमाणित है। तत्पश्चात सम्भवत: मोहिलों के बढते प्रभाव के आगे इस शाखा के राठौड़ अपना अस्तित्व नहीं बचा सके। इनके वंशज कहाँ गये खोजबीन करने पर भी जानकारी नहीं मिली। पुराने गढ पर शोध आवश्यक है।

उपर्युक्त तथ्य प्रमाणित करते हैं कि केलमदे उस राठौड़ वंश की राजकुमारी थी जिस वंश का सम्भवत: अन्तिम शासक राठौड़ नरहरिदास था। समय के साथ यह तथ्य विस्मृत हो गया लेकिन जब पाबुजी लोकदेवता के रूप में पूज्य हुये तो इस राठौड़ राजकुमारी को प्रतिष्ठित करने के लिये पाबुजी के परिवार में बताया गया, कालान्तर में पड़-पवाड़ों (यशोगान) की कहानी के आधार पर पाबुजी के भाई बुड़ोजी की बेटी बताया गया। गोगाजी चौहान के एक लड़के का नाम नानक होना प्रमाणित है, अन्य पुत्र-पुत्रियों या पोते-नातियों के नाम व संख्या इतिहास या साहित्य की किसी भी विधा में उपलब्ध नहीं हैं।

(क्रमश:)

पृष्ठ 11 का शेष

मेरी साधना

दरबारी मगधपति को शकटाल से सावधान रहने के कान भरते हैं और कहते हैं, वह अपने पुत्र को मगधपति बनाना चाहता है। शकटाल तक भी भनक पहुँच गई। वह तो वफादार, निष्ठावान और राष्ट्रभक्त है। पिता-पुत्र दोनों मिलकर सोचते हैं कि कैसे इस शंका को निर्मूल करें। पुत्र कहता है-आप मेरा मस्तक मगधपति के चरणों में चढा दो, शंका निर्मूल हो जाएगी। तब महामंत्री अपने पुत्र से कहता है-तू अंगरक्षक है, शंका निर्मूल करने हेतु कल मैं दरबार में आऊँ तब अपना कर्तव्य पालन के हिस्से के रूप में मेरा मस्तक काटकर मगधपति के चरणों में धर देना। दूसरे दिन ऐसा ही हुआ, शंका निर्मूल हो गई।

क्षत्रिय राष्ट्र के शासक थे। सूत्रधार थे। राष्ट्र के प्रति उनकी वफादारी, स्वामिभक्ति और समर्पण की भावना थी। समर्पण भाव क्षत्रियों का एक महत्त्वपूर्ण गुण रहा है। हम रामायण से बोध लें। भरत का समर्पण समझें। समर्पण भाव के कारण ही लाखों वर्षों तक क्षत्रिय जाति जीवित रही। प्रजा के दिल में 'प्रजावत्सल शासक' का मान भरा स्थान पाया।

समर्पण भाव की बात तो सभी को जचती है, पर ऐसे कि कोई दूसरा ही करे, मैं नहीं। पर हम जाति में समर्पण भाव जगाने, जाति का गौरव बढाने के लिए संकल्प करें।

(क्रमश:)

पृष्ठ 17 का शेष

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

की हिम्मत की प्रंशसा करने लगे। वे उसके लौटने की देर तक प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु उन्हें एक बड़ा झटका लगने वाला था। मित्रों ने उसे पुकारा, पर कोई उत्तर नहीं मिला। पूर्वी क्षितिज पर प्रात:काल की अरुणिमा प्रकट होने लगी। युवकगण अपने मित्र की खोज में कब्रगाह के भीतर प्रविष्ट हुए। वह जमीन पर पड़ा दिखाई दिया। जब मित्रों ने उसके पास जाकर उसे जगाने का प्रयास किया तो पता चला कि उसका शरीर बर्फ के समान ठण्डा था। वह कई घण्टे पूर्व ही मर चुका था।

उन लोगों को शीघ्र ही उसकी मृत्यु का कारण ज्ञात हो गया। हुआ यह कि जमीन में खम्भा गाड़ते समय उसकी शाल का एक छोर भी खम्भे के साथ जमीन में गड़ गया था। उसे इस बात का पता ही नहीं चला। हथौड़े के प्रहारों से खम्भा गाड़ने के बाद जब वह वहाँ से चलने लगा, तो उसे लगा कि कोई उसे पीछे की ओर खींच रहा है। इस प्रकार उसे पीछे की ओर खींचने वाला भूत के सिवा और कौन हो सकता था? वह भय के मारे ही ढेर हो गया।

खेद की बात यह है कि यदि उसने पीछे मुड़कर खींचने वाले को देखने का प्रयास किया होता, यदि उसे अपने भय का कारण ज्ञात हो जाता, यदि उसे खूँटे में फँसी अपनी शाल दिख जाती, तो उसकी जान न जाती। हमें अपने को आतंकित करने वाले भय के कारणों और उसके सच्चे स्वरूप का विश्लेषण करने में सक्षम होना चाहिए। धीरज खोए बिना हमें उन भयों को जीतने का उपाय ढूंढ़ना होगा। कभी-कभी भयावह स्थितियों का सामना करना हमारे लिए अपरिहार्य हो जाता है। हमें सर्व-शक्तिमान ईश्वर की शरण लेनी चाहिए, जो हमारे सारे भयों को नष्ट कर सकते हैं। हमें सच्चे हृदय से प्रार्थना करते हुए स्वयं को उनकी इच्छा के प्रति समर्पित कर देना चाहिए। **(क्रमश:)**

विचार-सरिता

(सप्त षष्टिः लहरी)

– विचारक

जीवनमुक्त महापुरुष की पहचान उसके आत्मानुभव से होती है न कि उसके कर्म से। मुक्ति भी ज्ञान से ही होती है, कर्म करके कोई मुक्त नहीं हो सकता। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग का वर्णन अवश्य किया है, पर वह ज्ञानी का कर्म है। क्योंकि उस कर्म के पीछे कर्तापने का अभाव और आसक्ति से रहित क्रिया से सम्पादित कर्म का स्वरूप है। अत: जीवन मुक्त महात्मा उस सामान्यजन की तरह कर्म करता हुआ दिखाई देता है, पर कामना रहित कर्म होने के कारण वह न तो कर्ता होता है और न भविष्य में भोक्ता ही बनता है। वह सुखी श्रीमान् संसार में रहते हुए भी संसार के धर्मों से रहित होता है, इसलिए उसकी कीर्ति पूरे विश्व में फैलती रहती है।

सभी कर्मों का आधार शरीर, मन एवं अहंकार है जिनके रहते सभी कर्म बन्धन ही हैं किन्तु ज्ञानी आत्मा में जगा हुआ जीता है जिससे उसके समस्त कर्म नाटकवत् तथा प्रारब्धाधीन होते हैं। वह उनमें लिपायमान नहीं होता। इसलिए ज्ञानी के वचन सत्य होते हैं किन्तु उसके कर्म कहे हुए वचनों से विपरीत भी हो सकते हैं। ऐसे में हमें ज्ञानीजनों के वचनों को प्रमाणित मानना है न कि उसके कर्मों को देखना है। ज्ञानी सामान्यजन की भाँति खाता पीता है, व्यवहार करता है किन्तु वह जगत् व्यवहार से उदासीन व सुप्त है। ज्ञानी विवेक में जीता है, सत्य में जीता है, सृष्टि के एकात्मक भाव में जीता है एवं अज्ञानीजन अहंकार एवं वासना में जीते हैं। ज्ञानी रहता तो संसार में है परन्तु भीतर में वह संसार से रहित होता है, जबकि अज्ञानी के भीतर और बाहर संसार ही संसार रचा पड़ा है।

ज्ञानी होश में जीता है इसलिए वह संसार में रहते हुए भी संसार के धर्मों से ऊपर उठा रहता है। कमल पानी में ही खिलता है परन्तु पानी से सदैव ऊपर उठा रहता है। इसलिए जैसे सरोवर की शोभा कमल से होती है, उसी प्रकार संसार की शोभा ज्ञानी जनों से होती है। जिस ग्राम या नगर में एक ज्ञानी भी रहता हो तो वहाँ का वातावरण भी ज्ञानमय हो जाता है। जो धीर पुरुष अनेक प्रकार के विचारों से थककर शान्ति को उपलब्ध होता है, वह न कल्पना करता है, न सुनता है, न देखता है। वह अपने निजानंद में डूबा रहता है। उसके लिए न त्याज्य है, न ग्राह्य है। ईष्ट और अनिष्ट की परिभाषा से जो परे हो गया है, वह जीवनमुक्त न जीने की चाह रखता है और न देह त्याग की।

भारत के सनातन धर्म में अनेकानेक सम्प्रदाय बन गए। धर्म कभी भी सम्प्रदायों में बांटा नहीं जा सकता। सत्य तो सबका एक ही होता है, इसलिए सत्य का कोई सम्प्रदाय नहीं बनता। सभी सम्प्रदाय असत्य के हैं। जहाँ सम्प्रदाय हैं वहाँ सत्य कैसे टिक सकता है। जहाँ सत्य है वहाँ सम्प्रदाय नहीं टिक सकता। इसलिए अष्टावक्र का कोई सम्प्रदाय नहीं बना। अष्टावक्र का अनुभव सौ टका शुद्ध अनुभव है। वे भेद और भ्रान्ति की कोई बात ही नहीं करते। सत्य में हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, स्त्री, पुरुष, गरीब, अमीर, वेद, कुरान, गीता आदि का भेद होता ही नहीं। भेद मात्र असत्य है और अभेद ही सत्य है। सत्य को जानने वाले ज्ञानी पुरुष पूर्ण शान्ति का अनुभव करते हैं। वे अपने आत्मस्वरूप में स्थित हो जाने से अन्य की न कल्पना करते हैं, न जानते हैं, न अपने से अतिरिक्त कुछ देखते हैं और न अपने से अतिरिक्त कुछ सुनते हैं। सर्वत्र उसी आत्मा को ही जानते हैं।

वह ज्ञानी महाशय विक्षेप-रहित और समाधि-रहित होने के कारण न मोक्ष की इच्छा करता है और न बन्धन ही मानता है। वह निश्चय पूर्वक संसार को मरुभूमि की मरीचिका की भाँति कल्पित देखता हुआ ब्रह्मवत् रहता है। इस संदर्भ में विचारसागर में आया है कि-

नाहीं पुष्प समान प्रपञ्च तो ईश कहाँ कर्ता जु कहावै।
साख्य नहीं इम साक्षी स्वरूप न, दृश्य नहीं हक काहीं जनावै।।

बन्धु हु होय तो मोक्ष बनै, अरू होय अज्ञान तो ज्ञान नशावै।
जानि यही कर्तव्य तजै सब निश्चल होत ही निश्चल पावै।।

अर्थात् यह प्रपंच खपुष्प समान (आकाश के फूल की तरह) होने से वास्तव में कल्पित है अर्थात् है ही नहीं, अत: जब जगत नाम की कोई वस्तु है ही नहीं तो उसका कर्ता ईश्वर कैसे सिद्ध हो सकता है। जैसे आकाश में फूलों का बगीचा ही नहीं है तो फिर उसका माली कौन होगा? कैसे होगा? अर्थात् नहीं ही होगा। जब पुष्प ही नहीं, बगीचा ही नहीं, तब माली की कल्पना करना भी मिथ्या ही होगा। उसी प्रकार जब जगत् ही आकाश कुसुम के समान है, अर्थात् है ही नहीं, तब इसका कर्ता ईश्वर भी नहीं।

साक्षी होय के बस अज्ञानादिक साक्ष्य कहा जाता है। जो साक्ष्य नहीं है, अत: साक्षी भी नहीं है। वैसे ही दृश्य के प्रकाशक को दृक कहते हैं और प्रकाशने के योग्य देहादिक को दृश्य कहते हैं। सो देहादिक दृश्य है नहीं। अत: दृक भी नहीं। यद्यपि केवल कुटस्थ चेतन को साक्षी और दृक कहते हैं, उनका निषेध बनता नहीं, तथापि साक्ष्य की अपेक्षा से साक्षी नाम और दृश्य की अपेक्षा से दृक नाम है। साक्ष्य और दृश्य का अभाव है, अत: साक्षी और दृक का नाम निषेध कहा गया है, स्वरूप का नहीं। क्योंकि स्वरूप तो परम सत्य है।

आत्मा में किसी प्रकार का बंध सम्भव ही नहीं वह तो नित्य मुक्त है। बंध हो तो उसकी निवृत्तिरूप मोक्ष की आवश्यकता रहेगी। अत: बंध ही नहीं तो मोक्ष भी नहीं। यदि अज्ञान हो तो उसका ज्ञान द्वारा बाध सम्भव है परन्तु शुद्ध स्वरूप में अज्ञान है ही नहीं तो उसका नाशक ज्ञान भी नहीं। इसलिए निश्चलदास जी महाराज कहते हैं कि उपरोक्त युक्ति से जब यह समझ लिया जाए कि परमात्मा तो ज्यों का त्यों सदा से ही एकरस विद्यमान है उसमें कोई विकार आया ही नहीं है तो कर्तव्य बुद्धि को भी त्यागे। क्योंकि यह लोक और परलोक तो तुच्छ हैं, अत: उनके निमित्त कुछ कर्तव्य नहीं और आत्मा में बन्ध नहीं, अत: मोक्ष के निमित्त भी कर्तव्य नहीं। इस प्रकार से आत्मा को नित्यमुक्त ब्रह्मरूप जानकर, या समझकर अनुभव करके जब निश्चल होवे, सब कर्तव्य त्यागे, तब निश्चल अर्थात् अक्रियब्रह्म स्वरूप विदेहमोक्ष को प्राप्त होता है।

इस तरह से साधक को अपने जीवभाव को ब्रह्म में गलीभूत करने के उपरान्त उसे जीवब्रह्म की अभिन्नता का निश्चय हो जाता है। अत: फिर कुछ भी करने योग्य या पाने योग्य शेष नहीं रह जाता है। अत: कर्तृत्वभाव मिट जाता है। निश्चल होते ही पाने योग्य तत्व को यानी ब्रह्माभिन्न अपने स्वरूप को पा जाता है। यद्यपि आत्मा तो ज्ञान से पहले भी नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप ही है, परन्तु ज्ञान से पूर्व आत्मा को मिथ्या कर्ता-भोक्ता मानकर के सुख की प्राप्ति और दु:ख की निवृति वास्ते मनुष्य अनेक साधन करता है, पर उनसे क्लेश की ही प्राप्ति होती है।

ईश्वर कृपा से जब साधक को श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु मिलते हैं तब तत्वमसि आदि महावाक्यों का यथार्थ उपदेश करते हैं। शिष्य को उन वेदान्त वाक्यों के श्रवणमात्र से ऐसा ज्ञान होता है-कि ''मैं कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ किन्तु मैं तो ब्रह्मस्वरूप हूँ अत: मेरे को किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।'' ऐसा जानना ही जीवन का लक्ष्य है। इस प्रकार नित्य प्राप्त की अनुभूति होना ही श्रवण का फल है। इसी जीवन में जिन महापुरुषों ने गुरुकृपा से अपने निश्चल स्वरूप में स्थिति पाई है वे धनधन्य हैं, कृतकृत्य हैं। ऐसे महापुरुषों के दर्शन व चरणकमलों में सिर टिकाने से साधक भी धनधन्य हो जाता है। ऐसे जीवनमुक्त महात्माओं के चरणों में मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।

शिवोहं! शिवोहं!! शिवोहं!!!

पेट जितना भी भरा रहे, आशा कभी नहीं भरती। वह जीवों को कोई न कोई अप्राप्य, कुछ नहीं तो केवल रंगों की माया का इन्द्रधनुष प्राप्त करने के मायावी दलदल में फंसा ही देती है।

- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सत्य असत्य प्रकाश

– अजयजी आर्य, दर्शनाचार्य, सारंगसर

परमपिता परमात्मा की असीम कृपा से हम सभी सौभाग्य शब्द से परिचित हैं। समय अनुसार हम सभी व्यवहार में कुछ विशेष परिस्थितियों को देखकर इस शब्द का प्रयोग भी करना पसंद करते हैं, परन्तु यह शब्द हम कब और कहाँ अधिकतर प्रयोग करना पसन्द करते हैं? तो ज्यादातर ऐसा देखने को मिलता है कि हम जब किसी बालक को किसी धनवान के घर में जन्म लेता हुआ देखते हैं या किसी व्यक्ति को किसी बड़े व्यक्ति की सहायता मिलने से उसे उन्नति करता हुआ देखते हैं और आजकल की परिस्थिति में यदि किसी अधिकारी को कहीं अधिक भ्रष्टाचार करने का अवसर मिल जाए या ऐसा पद मिल जाए जहाँ सब्जी की रेडी वाले तक की सुविधा घर के सामने मिल जाए तो भी हम स्वयं को सौभाग्यशाली मान लेते हैं। तो ये कुछ उदाहरण मात्र हैं कि हम अधिकतर सौभाग्यशाली किसे मानते हैं, यह व्यक्ति-व्यक्ति की समझ के अनुसार भेद हो सकता है। किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि ऐसी बातों का निर्णय अपनी मान्यताओं या समझ के अनुसार किया जाए या किसी आदर्श सज्जन या श्रेष्ठ लोगों के द्वारा जो कहा गया हो उसके आधार पर किया जाए। सत्य बात तो यह है कि हमें जीवन में उन्नति करनी है तो जो श्रेष्ठ, सज्जन, धर्मात्मा, परोपकारी, विद्वान, बुद्धिमान हैं उन्होंने जो आदर्श हमारे सामने रखे हैं उस आधार पर यदि हम निर्णय करेंगे और चलेंगे तो निश्चित रूप से हम उस उन्नति को प्राप्त कर लेंगे। जैसे किसी आयुर्वेद के जानकर व्यक्ति ने कहा कि भोजन में दूध के साथ नमक का मेल नहीं है यह विरुद्ध आहार है, इससे शरीर की हानि होती है। जबकि हमारी बुद्धि यह कहती है ऐसा कुछ नहीं होता, मैं इतने वर्षों से कर रहा हूँ और मेरे दादा परदादा भी करते रहे तो भी कुछ नहीं हुआ। यह दोनों बातें सही हो सकती हैं? जो जिस विषय का जानकार है उसने जो उसमें आदर्श बताया उसका व्यक्तिगत अनुभव या मान्यता के आधार पर खंडन हो सकता है? निश्चित रूप से कभी नहीं। इस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र में हम अपनी अल्प बुद्धि से, अज्ञानता से अनेकों निर्णय करते रहते हैं और उसी के अनुरूप उसे आदर्श मानकर चलते रहते हैं जो उचित नहीं है।

तो हम बात कर रहे थे सौभाग्यशाली किसे कहा जाए, तो इस विषय में ऋषियों का मत यह है कि जिस व्यक्ति का जन्म धार्मिक, सभ्य, संस्कारी, परोपकारी, विद्वान माता-पिता के घर में हुआ है या जिस व्यक्ति को इन गुणों वाला वातावरण या इस प्रकार के सगे संबंधी, परिवार, समाज, मित्र, गुरु-आचार्य प्राप्त हुए हैं निश्चित रूप से वही व्यक्ति इस धरती पर सौभाग्यशाली है। क्योंकि संसार की अनेक प्रकार की योनियों में से केवल यह मनुष्य जीवन ही वह जीवन है जिसमें चार प्रकार की विशेषताएँ देखने को मिलती हैं एक बुद्धि, दूसरी वाणी की अभिव्यक्ति, तीसरी दोनों हाथों की रचना और चौथी कर्म करने की स्वतंत्रता। जब ये चार प्रकार की विशेषताएँ हैं तो निश्चित रूप से इससे कोई विशेष प्रयोजन ही हमें सिद्ध करना होगा और वह प्रयोजन निश्चित रूप से अन्य पशु-पक्षी आदि के जीवन में जो प्रयोजन बना हुआ या जुड़ा हुआ है जैसे खाना-पीना और संतान उत्पत्ति, उससे तो मनुष्य जीवन का प्रयोजन भिन्न या बढ़कर ही होना उचित है अन्यथा इन विशेषताओं की कोई सार्थकता नहीं रह जाती। क्योंकि पशु समान प्रयोजन बिना इन विशेषताओं के भी पूरे किए जा सकते थे। अत: जिस व्यक्ति को हमने ऊपर बताया, ऐसा संस्कारवान माहौल अवसर मिला है केवल और केवल वही व्यक्ति इन चार विशेषताओं का ठीक-ठाक बुद्धि पूर्वक सदुपयोग कर सकता है और जो ऐसा सदुपयोग कर सकता है निश्चित मानिए मानव जीवन की जो पूर्ण सफलता है केवल वही प्राप्त कर सकता है और अन्य को भी करवा सकता है। अत: इस प्रकार का अवसर, वातावरण और आदर्श निर्माता जिसे मिले हैं वही व्यक्ति सौभाग्यवान है। कोई पद डिग्री या धन के होने मात्र से कोई व्यक्ति भाग्यवान नहीं हो सकता या हो जाता, क्योंकि वह अपने अधिकारों का और अवसरों का सदुपयोग करेगा या नहीं यह नहीं कहा

जा सकता। किन्तु इन उपरोक्त गुणों के होने पर निश्चित रूप से व्यक्ति सौभाग्य को प्राप्त करता है और अन्यों को करवा सकता है और इस मनुष्य जीवन का जो मुख्य प्रयोजन है नितान्त दुखों से छूटकर के पूर्ण सुख को, आनन्द को, स्वतंत्रता को, निर्भीकता को प्राप्त करना, उसे वह कर सकता है ऐसा हमें समझना चाहिए।

इस शब्द को बताने का प्रयोजन यही है कि परमपिता परमात्मा की अनुकम्पा से हम सभी जिस राष्ट्र, जिस परिवार, जिस समाज और जिस विचारधारा और जिस संगठन से जुड़े हुए हैं वह हमें सौभाग्यशाली बनने का एक बहुत ही उत्तम अवसर प्रदान कर रहा है। हम इसके महत्त्व को समझ सके या नहीं? किन्तु इससे इन बातों का, आदर्शों का, इन गुणों का महत्त्व कभी कम नहीं होता। बल्कि हम यदि इसे जान लेते हैं और अपने जीवन में अपना लेते हैं तो हम अपना ही महत्त्व बढ़ा लेते हैं। निश्चित रूप से ऐसा सौभाग्य हमें प्राप्त है और इसमें यह भी ध्यान देने की बात है कि यह सौभाग्य इस संसार में करोड़ों लोगों को प्राप्त नहीं है। अत: हम उन करोड़ों में से कुछ गिने-चुने ही लोग हैं, इसलिए हम सौभाग्यवान हैं। अब हमें करना क्या है, जो सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है उसकी सर्वप्रथम तो हम रक्षा करें, उसे संभालें, उसे सुरक्षित रखें, दूसरा उस सौभाग्य को तन मन धन से पुरुषार्थ करके हम बढाएँ और जब यह सौभाग्य हमारा बढ़ जाए तब हम इस सौभाग्य का सुख, लाभ, और यह अवसर अन्यों को भी पहुँचा करके अन्यों को भी भाग्यवान बनाएँ। यही इस मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया है या यूँ कहें इस धरती पर यदि मैंने मनुष्य के रूप में जन्म लिया है तो इन्हीं उद्देश्यों के साथ इसी प्रक्रिया और इन आदर्शों के साथ यदि मैं इस जीवन को जीता हूँ तो मुझे और किसी से, किसी भी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है कि मैं ठीक जिया हूँ या गलत जिया हूँ क्योंकि ऐसे व्यक्ति की अंतरात्मा इतनी बलवान, इतनी प्रसन्न, इतनी संतुष्ट, इतनी निर्भीक होती है कि उसे बाहर के अन्य किसी भी प्रकार के पदार्थ की अपेक्षा नहीं रहती। बाहर कार्य करते हुए भीतर से पूर्णता को प्राप्त कर लेना, भीतर से ही तृप्त हो जाना यही हमारे इस मनुष्य जीवन की पूर्ण सार्थकता और सफलता है।

आज हमने यहाँ पर सौभाग्य से जुड़ी कुछ बातों पर विचार करने का प्रयत्न किया। पुन: उपसंहार के रूप में जैसे-

- एक तो, हम सौभाग्यशाली आजकल किसे मानते हैं?
- दूसरा, आदर्श रूप में सौभाग्यशाली कौन है?
- तीसरा, यह सौभाग्य हमें प्राप्त है।
- चौथा, हमें आगे अब इस सौभाग्य को कैसे बढ़ाना है?
- पांचवा, व्यक्ति सौभाग्यशाली कब बनता है?

इन कुछ बातों पर हमने आज विचार किया है। आगे जैसे भी अनुकूलता और अवसर हो सकेंगे इस प्रकार एक आत्मा के रूप में, एक मनुष्य के रूप में, एक भारतीय के रूप में, एक क्षत्रिय के रूप में मुझे अपने आपको उन्नत करने के लिए किन-किन आदर्शों को, सत्य बातों को जानना चाहिए और इन सबसे संबंधित अपनी क्या-क्या गलत मान्यताएँ या विचार हो सकते हैं जिसे हमें बदलना चाहिए इस प्रकार की कुछ तुलनात्मक विश्लेषणात्मक विशेष बातों को हम जानने, सोचने, समझने, विचारने का प्रयास करेंगे। उन सिद्धान्तों को जानेंगे जो हमारी उन्नति के कारण हैं उनसे संबंधित जो भी सत्य और असत्य है उसका प्रकाश किया जाएगा, जिससे हम सभी उस असत्य को जानकर उसे छोड़ सकें और जो सत्य हमारी उन्नति का आधार है उसे हम आत्मसात कर सकें। अत: इस प्रकार का चिंतन किया जाएगा और किसी ने ठीक ही कहा है यदि इस संसार की उन्नति करनी है तो उसकी वास्तविक उन्नति का एकमात्र उपाय है मानव आत्मा का विकास और यह केवल सत्य से ही हो सकता है, सत्य विद्या से हो सकता है, सत्य धर्म से हो सकता है, असत्य से कभी नहीं। अत: उस सत्य असत्य को जानना हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है, जिस प्रकार आज एक ऑर्गेनिक और एक पेस्टिसाइड अन्न जिसमें एक शुद्ध है एक जहरीला है दोनों को हमारे लिये जानना जरूरी है और जैसे हम उस जहरीले अन्न को जानकर छोड़ देते हैं और जिस ऑर्गेनिक से हमें बल और दीर्घायु प्राप्त होती है उसे प्राप्त करते हैं, जिससे हमारा शरीर स्वस्थ रहे। ठीक इसी प्रकार आत्मा की उन्नति और रक्षा के लिए भी उस असत्य को छोड़कर हमें उस सत्य को जानना होता है। अत: जैसा अवसर जैसी मेरी बुद्धि और समझ है उसी को जानना और जनाना ही हमारा प्रयोजन रहेगा। ❐

संघ की नैतिक व व्यवहारिक शिक्षा का महत्त्व

– ब्रजराजसिंह खारड़ा

जिस प्रकार एक इमारत के बनने में बहुत से साधन लगते हैं वैसे ही जीवन की सुंदरतम इमारत को बनाने में शिक्षा तो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती ही है लेकिन इसके साथ अगर नैतिक और व्यवहारिक शिक्षा का समावेश हो जाए तो इसमें चार चांद लग जाते हैं।

केवल किताबी ज्ञान से ही जीवन की गाड़ी नहीं चला करती है हाँ किताबी ज्ञान जरूरी है पर उसके साथ-साथ व्यवहारिक ज्ञान नहीं होगा तो जीवन बिन टायर की गाड़ी के समान हो जाएगा जो गाड़ी खड़ी खड़ी तो बहुत सुन्दर लगती है पर चल नहीं सकती।

ये साधन की बात हो गई। अब बारी आती है निर्माता की। किसी भी निर्माण में जितना महत्त्वपूर्ण स्थान साधन का होता है उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान निर्माता का भी होता है। निर्माता यदि खरा है तो उसका निर्माण भी खरा ही होगा। क्योंकि कोई भी निर्माण स्वत: नहीं होता। उसके पीछे कोई न कोई निर्माता जरूर होता है। वह ठोक बजाकर हर बात से तसल्ली करता है कि कहीं से कुछ कमी न रह जाए। जब निर्माण ऐसे शुद्ध निर्माताओं द्वारा किया जाता है तो निश्चित ही परिणाम अपेक्षा से अधिक अच्छे प्राप्त होते हैं। लेकिन इमारत निर्माण और जीवन निर्माण में मूल अन्तर यह है कि इमारत में खराबी आने पर उसमें सुधार किया जा सकता है, पुन: निर्माण किया जा सकता है लेकिन यदि जीवन बिगड़ गया तो उसमें सुधार की गुंजाइश लगभग न के बराबर होती है। बच्चे समाज का, देश का भविष्य हैं। एक बच्चे के लिए उसके सबसे पहले निर्माता उसके माता-पिता, परिवार, उसके शिक्षकगण होते हैं। इन्हें किताबी ज्ञान के साथ नैतिक एवं व्यवहारिक शिक्षा की भी आवश्यकता है जिससे ये नवीन पीढ़ी सद्मार्ग पर चलते हुए स्वयं का भी जीवन प्रशस्त करते हुए समाज व देशहित में कार्य करते हुए उत्तम जीवन जी सकें।

आधुनिकता के इस युग में बच्चों में नैतिक एवं व्यवहारिक शिक्षा का अभाव बढ़ता जा रहा है। इसके लिए विद्यालय एवं परिवार दोनों ही बराबरी के जिम्मेदार हैं। आज हम बच्चों को इस सबके लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। लेकिन इसमें बच्चों से ज्यादा माता-पिता एवं विद्यालय जिम्मेदार है, क्योंकि आज परिवार के सदस्यों के बीच आपसी तालमेल एवं समय की कमी है। परिवार में एक-दूसरे के लिए समय ही नहीं है। परिवार के सदस्य बैठकर किसी बात पर चर्चा नहीं करते जिससे उन्हें बड़ों के अनुभव या कुछ सीखने समझने को मिले। आज घरों में बच्चों को रेम्प शो, फैशन शो आदि में भेजने के लिए पूरी तरह प्रयत्नरत रहते हैं किन्तु यदि कहीं कोई सांस्कृतिक, ऐतिहासिक या धर्म पर आधारित नाटक होते हैं या कोई संस्कार निर्माण के शिविर, शाखा या बैठक होती हैं तो हम उन्हें कभी देखने या भाग लेने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते।

आज विद्यालयों में भी वीरों, भक्तों, शहीदों की जयन्ती या हमारे स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में कभी चर्चा नहीं की जाती। शिक्षक सिर्फ अपना विषय पूरा करने तक ही सीमित हो गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक मशीन की तरह काम करता है, जितना उसे सौंपा गया है उतना ही करने की सोचता है। विद्यार्थी को कुछ अलग हटकर बताने में विश्वास नहीं रखता है।

हमारे बच्चों को यह नहीं मालूम होगा कि राम कौन हैं, कृष्ण कौन हैं! उनके माता-पिता कौन थे या उनके भाई कौन थे किन्तु यह अवश्य मालूम होगा कि सलमान खान, आमीर खान के पिता कौन हैं, कितने भाई हैं। उन्हें अपनी भारतीय संस्कृति, इतिहास बेकार और रूढियों से भरी नजर आती है। वहीं पश्चिमी सभ्यता एवं रहन-सहन ही उन्हें पसंद आने लगा है। भारतीय होते हुए भी अपने आपको पश्चिमी सभ्यता में ढालते जा रहे हैं।

हमारे पड़ौस में रहने वाले या नाते रिश्तेदार कौन हैं, हमारी संस्कृति, परम्परा क्या है, हमारा उज्ज्वल इतिहास क्या है इसकी जानकारी हो न हो पर नेट पर इंटरनेशनल चैटिंग बिना देखे, बिना जाने पहचाने कई सारे दोस्त बनाकर बातचीत होती रहेगी किन्तु अपने निकटतम लोगों के साथ बातचीत नहीं होती।

आज अपनी मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले, एक पक्षी के लिए अपना माँस तक देने वाले, एक गाय के लिये अपने शरीर तक को शेर के सामने प्रस्तुत करने वाले, अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई में अपने प्राणों की आहुति देने वालों के नाम या उन्होंने हमें क्या शब्द कहे यह नहीं मालूम। रामायण, महाभारत एवं गीता के बारे में जानकारी शून्य है किन्तु किस फिल्म में किस अभिनेता ने क्या संवाद कहे, वह कंठस्थ है। यही नहीं ऐसी न जाने कितनी समस्याएँ हैं जिन्हें दूर करने के लिये माता-पिता एवं विद्यालय दोनों को ही मिलकर प्रयास करने होंगे।

लक्ष्य मिल जाये तो उस तक पहुँचने का मार्ग भी खोजना होगा। इन सभी के लिए हमें अपने बच्चे-बच्चियों को किताबी ज्ञान के साथ-साथ नैतिक और व्यवहारिक ज्ञान देना बहुत जरूरी है और वो ज्ञान कोई विद्यालय, महाविद्यालय या ट्यूशन क्लास देने वाली नहीं है वो ज्ञान अगर हमें कहीं से मिल सकता है तो वो है सिर्फ श्री क्षत्रिय युवक संघ।

जहाँ 'अपनों को अपनो के लिए' जीना सीखाया जाता है, जहाँ 'सब एक के लिए एक सब के लिए' जीता है, जहाँ अपने परिवार, समाज या राष्ट्र के लिए सब कुछ न्योछावर करने में एक पल की भी देरी नहीं की जाती, जहाँ अपने भाई के लिए घर तो क्या तन-मन-धन तक त्याग दिया जाता है।

ऐसा व्यवहारिक ज्ञान सामुहिक संस्कारमय कर्मप्रणाली द्वारा चर्चाओं के माध्यम से, कहानियों के माध्यम से, खेलों के माध्यम से, अर्थबोध के माध्यम से बच्चों को जीवन जीने की एक कला सिखाई जाती है।

जीवन में पद, पैसा, प्रतिष्ठा के साथ-साथ ऐसा नम्रता भरे जीवन का पाठ पढ़ाया जाता है जिससे बालकों में बचपन से ही एक आदर्श व श्रेष्ठ मनुष्य बनने का भाव पैदा हो।

माता-पिता को समझना होगा कि हमें अपने बच्चों को एक बड़ा आदमी बनाने से पहले एक अच्छा इंसान बनाना है। उन्हें मानवता का पाठ पढ़ाएँ। हमें अपने बच्चों को जिम्मेदार नागरिक बनाना है तो उन्हें हर दिशा में जागरूक करने का प्रयास भी करना होगा।

इन सबके लिए विद्यालय के साथ-साथ श्री क्षत्रिय युवक संघ की आसपास लगने वाली शाखा व शिविर में बच्चों को भेजना ही भेजना है साथ ही जब भी हमें भी मौका मिले जरूर जाना है।

माता-पिता से फिर यही कहना चाहूंगा कि परीक्षा को लेकर बच्चों को आवश्यक मेहनत करने को कहें लेकिन इतना दबाव न डालें कि यदि उसका रिजल्ट खराब होता है तो वह गलत कदम उठाने का प्रयास करे। परीक्षा में पास या फेल होना जिन्दगी का अन्तिम पड़ाव नहीं है। अभी तो बच्चों की शुरुआत है आप बच्चों को बराबरी से समझें उन्हें पर्याप्त समय दें। उनसे खुलकर बात करें। विद्यालय में शिक्षकगण से संपर्क बनाए रखें और किसी समस्या से ज्यादा समाधान पर ध्यान दें। श्री क्षत्रिय युवक संघ के महत्त्व को समझें। एक बात आवश्यक रूप से ध्यान रखें कि हमें किताबी कीड़े नहीं बल्कि एक जिम्मेदार बेहतर इंसान बनाने में भी अपनी सार्थक भूमिका निभानी है। ❐

भाग्य के हाथ में सब कुछ है। लेकिन रुकना कभी श्रेयस्कर हुआ है? सांस रुकती है, उसे मौत कहते हैं, गति रुकती है तब भी मौत है। हवा रुकती है वह भी मौत है। रुकना सदा मौत है। जीवन नाम चलने का है।

– जैनेन्द्र कुमार

कल्पना से कर्म, कर्म से सत्यता की खोज तक

– जगमालसिंह ताणू

मस्तिष्क में मंथन के चलते या बेकार बैठे-बैठे कोई कल्पना जाग्रत की जाती है जो इन्द्रियों की चंचलता द्वारा हो या मस्तिष्क के ज्ञान कोष में रखे किसी विषय बिन्दु द्वारा हो। वह कल्पना समस्त इन्द्रियों को व मन-मस्तिष्क को अपनी ओर लालायित करके, मोहित करके स्वयं को प्रभावी बनाने लगती है। जब इस कल्पना को निर्विरोधित रूप से मान्यता मिल जाती है तो यह विचार का रूप धारण करने लगती है। अब यह बड़ा रूप धारण कर कई अन्य कल्पनाओं के सृजन हेतु स्वतंत्र बनकर लालसा वाली पैंतरेबाजी से स्वयं को विचार सिद्ध करा देती है। अब वह कल्पना पूर्णत: एक विचार बनकर मान्यता प्राप्त कर लेती है और सफल विचार बनने हेतु एक सोच में रूपान्तरित हो जाती है। सोच, जो कि अवधारणा का आधा रूप है।

सोच की स्थिति में उसी के प्रति लालायित होकर, उस सोच के दायरे में ही रहने हेतु बाध्य हो जाता है। यह सोच धीरे-धीरे उस व्यक्ति को अपनी जकड़ में लेकर एक विचारधारा बन अवधारणा का रूप धारण कर लेती है। जिससे व्यक्ति सम्पूर्णत: उस अवधारणा का ही होकर रह जाता है। यह अवधारणा कर्म का रूप लेने लगती है क्योंकि कर्म के अभाव में व्यक्ति की गति असम्भव है। कर्म कर लेने के पश्चात् फल अर्थात् परिणाम की बारी आती है। यह परिणाम उसी कल्पना का कर्म से अगला रूप होता है जो उस व्यक्ति को अनुभव प्रदान करता है। परिणाम से अनुभव में रूपान्तरण अब व्यक्ति के ज्ञानकोष को प्रभावित करता रहता है।

उस समय परिणाम यदि अच्छा मिलता है तो व्यक्ति ऐसे विचारों, सोच, अवधारणा, कर्मों, परिणामों को ही पसन्द करने लगेगा, महत्त्व देने लगेगा, साथ ही वैसी ही विचारधारा का, सोच का आदी बनता चला जाएगा। परन्तु यदि परिणाम बुरा मिलता है तो वह व्यक्ति ऐसी कल्पना, सोच, अवधारणा, विचारधारा, कर्म, परिणाम से दूर रहने का प्रयत्न करेगा। ऐसी अवधारणा से दूर होता जाएगा तथा नई अवधारणा की खोज करेगा। अब यदि इस पूरे चक्र पर आत्ममंथन करें तो पाएँगे कि एक कल्पना से प्रारम्भ कर अवधारणा और अनुभव पालन तक के इस चक्र में हमने कितना समय गंवा दिया, जबकि हमें ज्ञात है कि हमें एक निश्चित समय मिला है जीवन के रूप में। यदि ऐसे ही हम अनुभव लेते रहें गलत परिणामों के तो जीवन तो यों ही बीत जाएगा। अनुभवी बनते रहने में जबकि हम जानते हैं कि इस संसार में ज्ञान तो अनन्त है।

पर चिन्ता न करें, आखिर हम चिंतनशील मानव जाति की ही तो संतान हैं। समाधन भी तो होगा इसका? जी हाँ, समाधान है-जागरुकता, सतर्कता, सजगता, चैतन्यता। इसका प्रयोग हमें स्वयं पर करना चाहिए। प्रयोग ऐसे कि जब हमारे मस्तिष्क में कल्पना के बीज बोये जा रहे हैं उसी समय हम में सतर्कता इतनी हो कि मंथन द्वारा इस कल्पना के चक्र में क्या परिणाम होगा? सुधार होगा या विनाश लाएगी? यह पता लगा लें ताकि निर्णय वहीं हो जाए। लेकिन इस मंथन में एक शर्त है कि हम लालायित न होकर स्वयं के प्रति पूर्ण रूप से ईमानदार बने रहेंगे। इससे समय और घाटे के सौदों से बचा जा सकता है।

हम कभी भी आत्मचिन्तन, आत्ममंथन नहीं करते हैं, परिणामस्वरूप हम स्वयं को गलत आदतों, संगतों, लाचारियों में पाते हैं। स्वयं को उन ऊँचाइयों तक नहीं ले जा पाते, जहाँ जाने के हमने सपने संजोए थे। आसमान की उडान भरने वाली, तकदीर बनाने वाली धारणाओं में पानी फिरते देखते हैं। कारण यही है कि मस्तिष्क में उठने वाली कल्पनाओं पर हमने आत्मचिन्तन नहीं किया। लालच भरी कल्पनाओं में आकर्षण होता है, मोह होता है अत: वे दबदबा बना लेती हैं और भविष्य निर्माण वाली कल्पनाएँ धरी रहती हैं। अहसास तब होता है जब हम स्वयं को ऐसी स्थिति में पाते हैं, जिसके बारे में कभी सोचा भी नहीं था। इसीलिए प्रारम्भ में ही आत्मचिन्तन आवश्यक है।

कल्पनाएँ, इच्छाएँ आनी स्वाभाविक है। ये हमारी संगति, सोच, वातावरण से जुड़ी होती हैं। बुरे परिणामों वाली कल्पनाओं के वशीभूत होकर पाप का भागी नहीं बनना है। हमारी संगति अच्छी हो, अच्छे वातावरण में रहें, सोच पर आत्ममंथन करें और बुरे परिणाम वाली कल्पनाओं से दूरी बनाकर अच्छे परिणाम वाली कल्पनाओं पर भली प्रकार मंथन कर जीवन को विकास के मार्ग पर ले चलने का परिणाम प्राप्त करें। ❐

अपनी बात

दो राजकुमार, जब वे युवा थे, एक ही गुरुकुल में पढे। फिर पढने के बाद विदा हो गए। दीक्षांत हुआ और गुरु से विदा लेकर वे अलग-अलग रास्तों पर चले गये। वर्षों बाद एक तो बहुत बड़ा राजा हो गया और एक के पास जो था, उसको भी छोड़कर भिखारी (संन्यासी) हो गया। वह संन्यासी वर्षों बाद घूमता हुआ उस राजा की राजधानी में आया। वह राजा के महल में ठहरा। अपने सहपाठी मित्र के आने पर राजा बहुत खुश हुआ। राजा ने अपने मित्र से पूछा-तुम दूर-दूर के देशों में घूमकर आए हो, मेरे लिए क्या लाए हो? वे दोनों मित्र थे, बचपन से ही परस्पर गहरा उनका प्रेम रहा था, तो यह पूछना स्वाभाविक ही था। मैं राजा हूँ और यह भिखारी की स्थिति में है, इससे क्या माँगू, यह तो प्रेम के बीच में भाव आता ही नहीं।

संन्यासी मित्र ने कहा कि जब मैंने यहाँ तुम्हारे पास आने का विचार किया तो बहुत सोचा कि क्या ले चलूं तुम्हारे लिए, लेकिन जो भी मैं सोचता, पाता था कि वह तो तुम्हारे पास होगा ही। ऐसा क्या है, जो तुम्हारे पास नहीं, उसी को तलाशने मैं अनेक दुकानों पर गया, बहुत सी चीजें देखी, पर जिस किसी वस्तु पर नजर जाती, सोचता यह तो तुम्हारे पास होगी ही। जो तुम्हारे पास है, उसको तुम्हारे लिये भेंट स्वरूप लाने में क्या अर्थ है? बहुत खोजा, बहुत सोचा पर मुझे कुछ समझ नहीं आया। आखिर एक छोटी-सी चीज खरीदकर ले आया हूँ, जो कि तुम्हारे पास नहीं होगी। उसने अपनी झोली से वह चीज निकाली और उसे राजा को भेंट रूप में दी।

हम कल्पना नहीं कर सकते कि वह चीज क्या होगी, क्योंकि राजा बहुत बड़े राज्य का राजा था और उसके यहाँ किसी चीज की कमी ही नहीं थी, सब कुछ तो था। उसे एक भिखारी क्या भेंट दे सकता है। हमें शायद ही ख्याल आए कि उस संन्यासी ने अपने मित्र राजा को क्या भेंट दी। उसने बहुत छोटी-सी चीज भेंट में दी। बहुत ही छोटी-सी चीज थी, उसका कोई मूल्य भी नहीं था-वैसे उसका बड़ा मूल्य है। कई बार ऐसा होता है कि जिन चीजों का कोई मूल्य नहीं होता है, जीवन में उनका ही असल में मूल्य होता है। और जो बहुत मूल्यवान चीजें होती हैं, अन्त में पाया जाता है, जीवन में उनका कोई भी मूल्य नहीं था, व्यर्थ ही उनका बोझ उठाए फिरे।

उस संन्यासी ने दिया था एक छोटा-सा दर्पण। उसने राजा से कहा-इसे रख लो, इसमें कभी-कभी अपना चेहरा देख लिया करो। अजीब-सी बात थी। लेकिन बहुत कम लोग होते हैं जो अपने को देख पाते हैं। दुनिया में सब कुछ देख लेना आसान है, पर अपने को देखना बहुत कठिन है। ऐसा दर्पण जीवन में बहुत थोड़े ही लोगों को मिलता है जिसमें वे अपने आपको पहचान सकें। संन्यासी ने कहा-इसे अपने पास रख लो, इसमें अपने को देख लेना। दर्पण तो बाजार में बहुत मिलते हैं, खरीदे जा सकते हैं। लेकिन ऐसा दर्पण न तो खरीदा जा सकता है, न चुराया जा सकता है। इस दर्पण को स्वयं बनाना पड़ता है।

संघ के साधना मार्ग में आत्मावलोकन का अत्यन्त महत्त्व है। आत्मावलोकन से ही हम अपने आपको पहचान सकते हैं। दैनिक डायरी लिखकर हम दर्पण बनाते हैं। डायरी में अपने आपको प्रकट करते हैं, क्रमिक रूप से हमारे होने वाले वृतियों के परिवर्तन को देख सकते हैं। संघ के निर्देशानुसार इस दर्पण को हम बनाएँ, डायरी लिखें और अपने विकास की गति का अवलोकन करें, प्रभु हमें ऐसे में सदैव सक्रिय रखें यही चाह है। ❐

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

गणपतसिंह सोमेसरा

रामसिंह सोमेसरा

पदमसिंह भाउड़ा

संघबन्धुओं पदमसिंह जी भाउड़ा के संस्कृत शिक्षा विभाग में व्याख्याता , गणपतसिंह जी सोमेसरा के अध्यापक लेवल-2 व रामसिंह जी सोमेसरा के भाजपा किसान मोर्चा जिला मंत्री बाड़मेर बनने पर हार्दिक बधाई व उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

-: शुभेच्छु :-

परमवीर सिंह एलडीसी केसरपुर पाटोदी, वागसिंह लोहिड़ी, मनोहर सिंह सिणेर द्वितीय, चन्दनसिंह चान्देसरा, सुमेर सिंह कालेवा, मूल सिंह चांदेसरा, जोगसिंह नोसर, एडवोकेट वीरमसिंह थोब, समुन्द्रसिंह चांदेसरा, मूल सिंह काठाडी, बलवंत सिंह कोटड़ी, राणसिंह टापरा, सुल्तानसिंह चांदेसरा, विरम सिंह वरिया, जेतमालसिंह बिशाला, कुंदन सिंह तिलवाड़ा, दौलत सिंह मुंगेरिया, नरेन्द्रसिंह कितपाला, प्रेमसिंह पांचला एवं समस्त साथी श्री क्षत्रिय युवक संघ बालोतरा सम्भाग।

नवम्बर सन् 2021
वर्ष : 58, अंक : 11

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह